IAS / PCS / JUDICIAL

:9811195920

Rahul's IAS
a blue print of success

दण्ड प्रक्रिया संहिता

न्यायिक सेवा परीक्षा

No part of this publication can be reproduced or transmitted in any form or by any means, without prior permission of the Publisher.

B-9, Ist Floor, Commercial Complex,
Above Bank of Maharashtra, Dr. Mukherjee Nagar, Delhi-9
E-mail: rahuls_ias@rediffmail.com

दिशा प्रिलिम्स मैप

इतिहास एवं कला

2015

दण्ड प्रक्रिया संहिता

भूमिका

I. भूमिका :

वर्तमान संहिता से पहले भारत में दण्ड प्रक्रिया संहिता 1898 लागू थी। वर्तमान संहिता को दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 कहा जाता है। यह संहिता 1 अप्रैल 1974 को जम्मू और कश्मीर के अतिरिक्त संपूर्ण भारत में लागू हुई। अध्याय 8 (परिशान्ति एवं सदाचार हेतु प्रतिभूति), अध्याय 10 (लोक व्यवस्था एवं प्रशान्ति) तथा अध्याय 11 (पुलिस का निवारण कार्य) के अतिरिक्त अन्य अध्याय नागालैंड एवं जनजाति क्षेत्रों में लागू नहीं होते हैं। दण्ड प्रक्रिया संहिता आपराधिक मामलों में अन्वेषण, जांच और विचारण के विषय में उपबंध करती है। यह संहिता दण्डात्मक एवं निवारकात्मक दो प्रकार की प्रक्रियाओं से संबंध रखती है।

1. **दण्डात्मक प्रक्रिया** - दण्डात्मक व्यवस्था में अपराध कर दिया जाता है तो अभियुक्त का अभियोजन किया जाता है।
2. **निवारात्मक प्रक्रिया** - इसके अन्तर्गत अपराध करने से पहले ही अपराधी को अपराध करने से रोक दिया जाता है। जैसे धारा 106-110 तथा धारा 149-153 आदि की कार्यवाहियां।
3. **सारभूत विधि** - मूल रूप से Cr.P.C. एक प्रक्रियात्मक विधि है। यह वह प्रक्रिया बताती है जिसके अनुसार अभियुक्त का अभियोजन किया जायेगा लेकिन Cr.P.C. में सारभूत विधि भी सम्मिलित है। सारभूत विधि ऐसी विधि होती है जो अधिकार और दायित्व निश्चित करती है जैसे भरण पोषण (धारा 125), जमानतीय अपराधों में जमानत पर छूटने का अधिकार (धारा 436), अपील का अधिकार (धारा 372-394), मामले के अन्तरण का अधिकार (धारा 406-412) आदि।
4. **प्रक्रियात्मक विधि** - मुख्य रूप से इसे हम प्रक्रियात्मक विधि कहते हैं। IPC के अन्तर्गत किया गया प्रत्येक अपराध Cr.P.C. के अन्तर्गत विचारित किया जाता है। यदि विशेष अपराधों के लिए कोई प्रक्रिया निश्चित न की गई हो तो ऐसी दशा में Cr.P.C. के उपबंध लागू होंगे। यदि प्रक्रिया निश्चित कर दी गई हो तो वह प्रक्रिया लागू होगी Cr.P.C. नहीं।

II. उद्देश्य :

संहिता का मुख्य उद्देश्य न्यायिक कार्यवाहियों में नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का अनुसरण करना, अन्वेषण एवं विचारण में अनावश्यक विलंब को टालना तथा प्रक्रिया को सरल बनाना है। संहिता का मुख्य सिद्धान्त प्राकृतिक न्याय है जैसे न्यायाधीशों का स्वतंत्र होना। कोई हित होने की दशा में मामले का अन्तरण किया जाना (धारा 479), विचारण से पहले आरोप लगाया जाना, सुनवाई का उचित अवसर दिया जाना, दंड की मात्रा के प्रश्न पर सुनवाई का [Section 235 (2), Section 248 (2)], अपील का अधिकार आदि।

Magistrate/Judge

Executive (कार्यपालक) (राज्य सरकार)
1. *DM (कलेक्टर) IAS/RCS Officer*
2. *SDM*
3. *Executive Magistrate (कार्यपालक मजिस्ट्रेट)*

Judicial (न्यायिक) (उच्च न्यायालय)
1. *सेशन न्यायाधीश*
2. *Additional Session Judge*
3. *Assistance Session Judge*
4. *CJM*
5. *Additional CJM*
6. *JM – I, JM – II*

III. परिभाषा :

(1) **जमानतीय तथा अजमानतीय अपराध [Section 2 (a)]:**

जमानतीय अपराध से ऐसा अपराध अभिप्रेत है जो प्रथम अनुसूची में जमानतीय के रूप में दिखाया गया है या किसी अन्य विधि द्वारा जमानतीय बनाया गया है और अजमानतीय अपराध से कोई अन्य अपराध अभिप्रेत है। जमानतीय अपराध में जमानत अधिकार के रूप में प्राप्त की जा सकती है। व्यवहार में पुलिस अधिकारी या न्यायालय उन मामलों में जमानत पर अभियुक्त को न्यायिक अभिरक्षा से मुक्त कर देते हैं।

गैर जमानतीय अपराध का अभिप्राय यह नहीं है कि जमानत नहीं ली जा सकती। इन मामलों में जमानत न्यायालय के विवेक पर ही ली जा सकती है। संहिता में ऐसा कोई परीक्षण निर्धारित नहीं किया गया है जिसके आधार पर जमानतीय और अजमानतीय अपराधों का वर्गीकरण कर सकें। सामान्यतः जमानतीय अपराधों की अपेक्षा अजमानतीय अपराध गंभीर प्रकृति के होते हैं तथा समाज को अधिक प्रभावित करते हैं।

संहिता की प्रथम अनुसूची के अनुसार IPC के अतिरिक्त अन्य अपराध 3 वर्ष या अधिक के कारावास से दंडनीय अपराध को अजमानतीय माना जाता है जबकि तीन वर्ष से कम अवधि के कारावास से दंडनीय अपराध को जमानतीय माना गया है।

(2) संज्ञेय एवं असंज्ञेय अपराध [Section 2 (c) and 2 (l)]:

संज्ञेय अपराध से अभिप्रेत है कि पुलिस अधिकारी किसी व्यक्ति को बिना वारंट के गिरफ्तार कर सकता है। असंज्ञेय अपराध ऐसा अपराध होता है जिसके अन्तर्गत पुलिस अधिकारी बिना वारंट के किसी व्यक्ति को गिरफ्तार नहीं कर सकता है। संज्ञेय और असंज्ञेय मामलों के अन्तर को निम्न चार्ट के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है :-

संज्ञेय अपराध	असंज्ञेय अपराध
1. ये सामान्यतः गंभीर प्रकृति के अपराध होते हैं।	1. संज्ञेय अपराधों की अपेक्षा साधारण प्रकृति के अपराध होते हैं।
2. IPC के अतिरिक्त अन्य अधिनियमों में तीन वर्ष या अधिक के कारावास से दंडनीय अपराधों को संज्ञेय अपराध माना गया है।	2. IPC के अतिरिक्त अन्य अधिनियम में तीन वर्ष से कम अवधि के दंडनीय अपराधों को असंज्ञेय माना गया।
3. उदाहरण - भारत सरकार के विरुद्ध युद्ध छेड़ना (Section 121 IPC), हत्या (Section 302), आपराधिक मानववध (Section 304), दहेज हत्या (Section 304 B), चोरी (Section 379-382), अपकर्षण (Section 384) आदि।	3. उदाहरण - सम्मन की उपेक्षा करना (Section 172 IPC), मिथ्या सूचना देना (Section 177 IPC), रिष्टि (Section 426), छल (Section 417 IPC) आदि।
4. पुलिस अधिकारी बिना वारंट गिरफ्तार कर सकता है।	4. पुलिस अधिकारी बिना वारंट गिरफ्तार नहीं कर सकता।
5. न्यायालय या मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना पुलिस अधिकारी अन्वेषण करने के लिए बाध्य है।	5. न्यायालय या मजिस्ट्रेट के आदेश में बिना अन्वेषण संभव नहीं है।
6. संज्ञेय अपराध लोक प्रकृति के अपराध समझे जाते हैं। अतः उसका विचारण राज्य द्वारा किया जाता है। उन्हें दंडित करना राज्य के हित में माना जाता है।	6. असंज्ञेय अपराधों की निजी प्रकृति का अपराध समझा जाता है। अतः अभियुक्तों का विचारण सामान्यतः पीड़ित पक्षकार द्वारा करवाया जाता है।

अनेक बार एक ही मामले में अनेक अपराध सम्मिलित होते हैं। उनमें से कुछ संज्ञेय और कुछ असंज्ञेय हो सकते हैं। यदि उनमें से एक भी अपराध संज्ञेय हो तो सभी मामलों का विचारण संज्ञेय मामले के अनुसार किया जायेगा। इस प्रकार कोई मामला आंशिक रूप से संक्षेप तथा आंशिक रूप से असंज्ञेय वध हो सकता है। वे सभी मामले जिनमें पुलिस अधिकारी वारंट के बिना गिरफ्तार कर सकता है, संज्ञेय मामले नहीं होते हैं।

(3) परिवाद [Section 2 (d)]:

परिवाद से Cr.P.C. के अधीन मजिस्ट्रेट द्वारा कार्यवाही किये जाने की दृष्टि से मौखिक या लिखित रूप में उससे किय गया यह कथन अभिप्रेत है कि किसी व्यक्ति (ज्ञात या अज्ञात) ने अपराध किया है किन्तु इसके अन्तर्गत पुलिस रिपोर्ट नहीं है।

यदि मामले के अन्वेषण के पश्चात् असंज्ञेय अपराध किया जाना प्रकट हो तो पुलिस अधिकारी द्वारा दी गई रिपोर्ट को परिवाद समझा जायेगा तथा वह पुलिस अधिकारी जिसने ऐसी रिपोर्ट दी। परिवाद का कोई लिखित प्रारूप नहीं होता है। आपराधिक मामलों में परिवाद का वह स्थान है जो सिविल मामले में वाद का होता है।

परिवाद मजिस्ट्रेट के समक्ष किया जाना चाहिए किसी पुलिस अधिकारी के समक्ष नहीं। परिवाद का उद्देश्य यह होता है कि मजिस्ट्रेट के द्वारा उचित कार्यवाही की जाये। एक शपथपत्र भी परिवाद हो सकता है।

परिवाद में किसी अपराध (संज्ञेय या असंज्ञेय) के घटित होने के तथ्य का वर्णन किया जाना चाहिए। धारा 125 के अन्तर्गत भरण पोषण प्रदान करने से इंकार करना अपराध नहीं है। परिवाद में IPC की धाराओं या अपराध के नाम का उल्लेख करना आवश्यक नहीं है। पीड़ित पक्षकार के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति भी परिवाद पेश कर सकता है परन्तु विवाह तथा मानहानि से संबंधित अपराध तथा धारा 195-197 Cr.P.C. के अन्तर्गत वर्णित अपराधों के मामलों में परिवाद मात्र पीड़ित पक्षकार द्वारा नहीं पेश किया जा सकता है।

(4) FIR व परिवाद में अन्तर :

FIR	परिवाद
1. परिवाद में आरोप लिखित व मौखिक में मजिस्ट्रेट के समक्ष लगाये जाते हैं।	1. FIR पुलिस अधिकारी के भार साधक (SHO) को दर्ज करवायी जाती है।
2. परिवाद संज्ञेय व असंज्ञेय दोनों प्रकार के मामलों में पेश किया जा सकता है।	2. FIR मात्र संज्ञेय मामलों में दर्ज करवायी जाती है।
3. मजिस्ट्रेट परिवाद पर अपराध का संज्ञान ले सकता है।	3. मजिस्ट्रेट FIR पर अपराध का संज्ञान नहीं हो सकता है।
4. सामान्यतः पुलिस अधिकारी द्वारा परिवाद नहीं किया जा सकता है।	4. एक पुलिस अधिकारी भी FIR भी दर्ज करवा सकता है।
5. धारा 155 के अन्तर्गत पुलिस अधिकारी द्वारा असंज्ञेय मामलों में परिवाद पेश किया जा सकता है।	5. मजिस्ट्रेट FIR पर अपराध का संज्ञान नहीं ले सकता।

(5) जांच [Section 2 (g)]:

मजिस्ट्रेट या न्यायालय द्वारा Cr.P.C. के अन्तर्गत की गई कोई भी कार्यवाही (सिवाय विचारण के) जांच कहलाती है। मजिस्ट्रेट के समक्ष चार्ज (Charge) के निर्माण से पूर्व की सभी कार्यवाहियां जिनके द्वारा अभियुक्त को दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता जांच कहलाती हैं। धारा 209 के अन्तर्गत सपुर्द करने की कार्यवाही (Committal Proceeding) भी जांच ही मानी जाती है। असंज्ञेय मामले में पुलिस से सूचना प्राप्त होने के उपरांत मजिस्ट्रेट धारा 159 के अन्तर्गत प्रारंभिक जांच कर सकता है। किसी व्यक्ति की पुलिस अभिरक्षा में मृत्यु हो जाने पर मजिस्ट्रेट को उसकी जांच करनी पड़ती है (धारा 176)। यदि मजिस्ट्रेट को कोई परिवाद प्रस्तुत किया जाता है तो मजिस्ट्रेट धारा 202 के अन्तर्गत स्वयं जांच कर सकता है।

(6) जांच और विचारण में अन्तर :

जांच और विचारण दोनों न्यायिक कार्यवाहियां होती हैं। परन्तु जांच विचारण से बिल्कुल अलग होती है। जहां विचारण आरंभ होता है, वहां जांच रुक जाती है। विचारण को संहिता में परिभाषित नहीं किया गया है। दोनों में अन्तर :

जांच [Section 2 (g)]	विचारण
1. आरोप (Charge) के निर्माण से पूर्व की सभी कार्यवाहियां जो मजिस्ट्रेट के समक्ष की जाती हैं जांच कहलाती हैं। जांच का अन्त दोषमुक्ति (acquittal) या दोषसिद्धि (conviction) में नहीं होता है। इसके अंत में उन्मोचन (discharge) हो सकता है। मामला सैशन न्यायाधीश को सेपुर्द (commit) भी किया जा सकता है।	1. विचारण में न्यायिक अधिकरण द्वारा हेतुक का परीक्षण तथा निर्धारण किया जाता है। जिसकी समाप्ति दोषमुक्ति या दोषसिद्धि में होती है।
2. आपराधिक मामले में दूसरी अवस्था जांच है।	2. तीसरी अवस्था - विचारण।

3. जांच अपराध के अतिरिक्त अन्य मामलों जैसे भरणपोषण, कब्जे से संबंधित विवाद, उपताप आदि मामलों में भी की जा सकती है। 4. विचारण के अतिरिक्त अन्य सभी कार्यवाहियां जांच में शामिल हैं जो मजिस्ट्रेट द्वारा की जाती हैं। 5. उद्देश्य - साक्ष्यों की सत्यता का परीक्षण करना।	3. विचारण हमेशा अपराध कर ही किया जाता है। 4. विचारण में न्यायालय/मजिस्ट्रेट द्वारा वाद हेतुक का निरीक्षण एवं निर्धारण किया जाता है। तथा आरोप से आरंभ होकर दोषमुक्ति या दोषसिद्धि पर इसकी समाप्ति होती है। 5. उद्देश्य - अभियुक्त को दंड देना या उसे दोषमुक्त करना।

(7) अन्वेषण (Investigation) [Section 2 (h)]:

Cr.P.C. के अन्तर्गत पुलिस अधिकारी द्वारा साक्ष्य एकत्र करने के लिए की गई सभी कार्यवाहियां अन्वेषण कहलाती हैं। साक्ष्य एकत्र करने के लिए गिरफ्तारी, तलाशी, गवाहों का परीक्षण आदि सभी कार्यवाहियां अन्वेषण में सम्मिलित हैं।

(8) अन्वेषण, जांच और विचारण :

अन्वेषण, जांच और विचारण से एक मामले की तीन अवस्थाओं के बारे में जानकारी प्राप्त होती है। प्रथम अवस्था में पुलिस अधिकारी द्वारा अन्वेषण किया जाता है। इसके अन्तर्गत साक्ष्य को एकत्र करके यह पता लगाने का प्रयास किया जाता है कि वास्तव में कोई अपराध हुआ है या नहीं। अन्वेषण संज्ञेय मामलों में पुलिस अधिकारी द्वारा स्वविवेक पर तथा असंज्ञेय मामले में मजिस्ट्रेट के आदेश पर की जाती है। यदि अपराध के तथ्य सामने नहीं आ पाते तो मामले को समाप्त कर दिया जाता है। यदि अपराध के तथ्य सामने आते हैं तो मामला मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है।

अन्वेषण के उपरांत जांच आरंभ होती है। यदि प्रथम दृष्टया मामला बनता है तो न्यायाधीश 'आरोप' बनाता है तथा यदि मामला नहीं बनता तो अभियुक्त को उन्मोचित कर दिया जाता है। न्यायाधीश/मजिस्ट्रेट स्वयं आरोप के निर्माण से पूर्व जांच कर सकता है।

तीसरी अवस्था (विचारण) तब प्रारंभ होती है जब आरोप का निर्माण किया जाता है। गंभीर अपराधों में विचारण सैशन न्यायाधीश द्वारा किया जाता है। अन्य सभी मामलों में मजिस्ट्रेट द्वारा आरोप का निर्माण करके विचारण आरंभ करवाया जाता है। विचारण की समाप्ति सामान्यतः दोषसिद्धि या दोषमुक्ति के साथ होती है।

(9) अन्वेषण एवं जांच में अन्तर :

अन्वेषण [Section 2 (b)]	जांच [Section 2 (g)]
1. पुलिस अधिकारी द्वारा स्वयं या मजिस्ट्रेट के आदेश पर।	1. मजिस्ट्रेट या न्यायालय द्वारा।
2. उद्देश्य - साक्ष्य एकत्र करना।	2. उद्देश्य - आगे कार्यवाही करने के लिए तथ्यों की सत्यता का पता लगाना।
3. गैर न्यायिक कार्यवाही।	3. न्यायिक कार्यवाही। गैर न्यायिक दोनों प्रकार की हो सकती हैं।
4. गिरफ्तारी, तलाशी, परीक्षण आदि सभी कार्यवाहियां इसमें सम्मिलित हैं।	4. मजिस्ट्रेट द्वारा सामान्यतः गवाहों का परीक्षण आदि किया जाना इसमें सम्मिलित है।

IV. समन, मामला एवं वारण्ट मामला :

वारण्ट मामले से ऐसा मामला अभिप्रेत है जो मृत्यु, आजीवन कारावास या दो वर्ष से अधिक की अवधि के कारावास से दंडनीय किसी अपराध से संबंधित है। [Section 2 (x)]

समन मामले से ऐसा मामला अभिप्रेत है जो किसी अपराध से संबंधित है और जो वारण्ट मामला नहीं है। [Section 2 (w)]

सजा की गंभीरता और अधिकता के आधार पर समन मामलों तथा वारण्ट मामलों का विभाजन किया गया है। दो वर्ष से अधिक के कारावास से दण्डनीय मामले, वारण्ट मामले तथा दो वर्ष तक की सजा से दण्डनीय मामले समन मामले माने जाते हैं। इस विभाजन से विचारण की प्रक्रिया में अन्तर आता है। समन मामलों का

विचारण धारा 251 से 259 में किया जाता है जबकि वारण्ट मामलों का विचारण धारा 238 से 250 में वर्णित प्रावधानों के अन्तर्गत किया जाता है।

अभियुक्त को न्यायालय में उपस्थित करने के लिए समन मामलों में सामान्यतः समन भेजा जाता है तथा वारण्ट मामलों में सामान्यतः वारण्ट भेजा जाता है परन्तु मजिस्ट्रेट इस नियम का पालन करने के लिए बाध्य नहीं है।

वारण्ट मामले में सामान्यतः समन मामले की प्रक्रिया को नहीं अपनाया जाना चाहिए। यदि समन मामले की प्रक्रिया को अपनाया गया है तथा अभियुक्त के साथ कोई अन्याय नहीं हुआ है तो इस अनियमितता को धारा 465 के अन्तर्गत दूर किया जा सकता है। न्याय के हित में समन मामले का विचारण वारण्ट मामले की तरह किया जा सकता है। यदि अनेक आरोपों (charges) में से कुछ समन मामले तथा कुछ वारण्ट मामलों से संबंधित हो तो संपूर्ण मामला वारण्ट मामला माना जायेगा।

समन मामले और वारण्ट मामले के अन्तर को निम्न चार्ट के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है :-

वारण्ट मामला [Section 2 (x)]	समन मामला [Section 2 (w)]
1. मृत्युदण्ड, आजीवन कारावास या दो वर्ष से अधिक के कारावास से दण्डनीय मामला।	1. दो वर्ष तक के कारावास से दण्डनीय मामला।
2. विचारण के लिए विस्तृत प्रावधान किये गये हैं। पुलिस रिपोर्ट पर दर्ज मामलों तथा निजी परिवाद पर दर्ज मामलों का विचारण अलग-अलग प्रक्रिया द्वारा किया जाता है। [Chapter 19, Section 238 to S. 250]	2. विचारण की प्रक्रिया वारण्ट मामलों की अपेक्षा संक्षिप्त है। [Chapter 20, Sections 251-259]
3. आरोप का निर्माण औपचारिक रूप से किया जाना अत्यंत आवश्यक है।	3. औपचारिक रूप से आरोप का निर्माण आवश्यक नहीं है। परन्तु अपराध के तथ्य अभियुक्त को बताये जाने चाहिए।
4. आरोप के निर्माण के उपरांत यदि अभियुक्त अपना अपराध स्वीकार करता है तो मजिस्ट्रेट उसे दोषसिद्ध घोषित कर सकता है।	4. यदि अभियुक्त अपना अपराध स्वीकार करता है तो मजिस्ट्रेट उसके अभिवचन को दर्ज करने के लिए बाध्य है अपने विवेक पर उसे दंडित कर सकता है।
5. मजिस्ट्रेट अभियोजन पक्ष के किसी गवाह की प्रतिपरीक्षा को बाद की तिथि पर टाल सकता है।	5. ऐसा कोई प्रावधान समन मामलों के संबंध में नहीं किया गया है।
6. आरोप के निर्माण से पूर्व यदि परिवादी अनुपस्थित रहता है तथा अपराध शमनीय तथा असंज्ञेय हो तो अभियुक्त को उन्मोचित किया जा सकता है।	6. यदि परिवादी अपनी मृत्यु या किसी अन्य कारण से न्यायालय में उपस्थित नहीं होता तो अभियुक्त को दोषमुक्त किया जा सकता है।
7. परिवादी द्वारा परिवाद वापस लेने के संबंध में कोई प्रावधान नहीं है।	7. न्यायालय की स्वीकृति से परिवादी परिवाद वापस ले सकता है।
8. पूर्व दोषसिद्धि के संबंध में विस्तृत प्रावधान किया गया है। [Section 248 (3) + Section 298 Cr.P.C.]	8. ऐसा कोई प्रावधान नहीं।
9. अभियुक्त की दोषसिद्धि की अवस्था में सजा के बिन्दु पर सुनवाई आवश्यक है। [Section 248 (2) Cr.P.C.]	9. ऐसा कोई प्रावधान नहीं है।
10. वारण्ट मामलों की सुनवाई समन मामले की तरह करने से यदि अभियुक्त के साथ अन्याय हो तो विचारण को अपास्त कर देना चाहिए।	10. समन मामले की सुनवाई वारण्ट मामले की तरह करने से अभियुक्त के साथ कोई अन्याय नहीं होता है।

प्रथम सूचना रिपोर्ट (FIR)

I. भूमिका :

FIR शब्द को Cr.P.C. में परिभाषित नहीं किया गया है। FIR की संकल्पना धारा 154 में दिखाई देती है। प्रथम सूचना रिपोर्ट क्षेत्राधिकार रखने वाले थाने के भारसाधक अधिकारी को संज्ञेय अपराध के बारे में लिखाई जाती है और धारा 154 के अनुसार राज्य सरकार द्वारा निश्चित रजिस्टर में अभिलिखित की जाती है। सूचना देने वाले के उस पर हस्ताक्षर करवाकर उसे सूचना की एक प्रति निःशुल्क दी जाती है। इस प्रकार थाने के भारसाधक अधिकारी को किसी संज्ञेय अपराध के घटित होने की मौखिक या लिखित सूचना FIR कहलाती है।

संज्ञेय अपराध का अर्थ ऐसे अपराध से है जिसे Cr.P.C. की प्रथम सूची में या किसी अन्य प्रवृत्त विधि में संज्ञेय घोषित किया गया है जिसकी पुलिस द्वारा वारण्ट के बिना गिरफ्तार किया जा सकता है। [Section 2 (c)]

असंज्ञेय अपराध का अर्थ ऐसे अपराध से है जो संज्ञेय नहीं है जो बिना वारण्ट गिरफ्तार नहीं कर सकता [Section 2 (l)]। संज्ञेय और असंज्ञेय अपराध में मुख्य अन्तर गिरफ्तारी की शक्ति को लेकर है।

टेलीफोन द्वारा सूचना या तार के द्वारा सूचना अपराध की सूचना हो सकती है किन्तु विधि की भाषा में प्रथम सूचना रिपोर्ट नहीं हो सकती।

II. FIR अभिलिखित नहीं होने पर [Section 154 (3)]:

यदि थाने का भारसाधक अधिकारी FIR अभिलिखित नहीं करता तो ऐसी दशा में पीड़ित व्यक्ति पुलिस अधीक्षक को डाक के द्वारा सूचना भेज सकता है। FIR को डाक के द्वारा भेजा जाना बाध्यकारी उपबंध नहीं है।

जब पुलिस अधीक्षक को धारा 154 (3) के अन्तर्गत FIR भेजी जाती है और पुलिस अधीक्षक यह समझता है कि संक्षेप अपराध हुआ है तो उस मामले में वह स्वयं अन्वेषण कर सकता है या वह किसी अन्य पुलिस अधिकारी को अन्वेषण करने के लिए प्राधिकृत कर सकता है। यदि पुलिस अधीक्षक द्वारा किसी अन्य पुलिस अधिकारी को अन्वेषण के लिए अधिकृत किया जाता है तो उसे वे सब शक्तियां होंगी जो उस थाने के भारसाधक अधिकारी को हैं।

III. प्रथम सूचना रिपोर्ट का साक्ष्यिक महत्व :

FIR एक सारभूत साक्ष्य नहीं माना जाता। इसका महत्व इसमें है कि इसके द्वारा आपराधिक विधि को गति प्रदान की जाती है। इसका महत्व निम्न बिन्दुओं द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है :-

1. सूचना देने वाले व्यक्ति की दृष्टि में इसका महत्व यह है कि आपराधिक विधि को गतिशीलता प्राप्त हो जाती है तथा अन्वेषणकर्ता को अपराध के बारे में जानकारी प्राप्त हो जाती है जिससे अपराधी को उसके अंजाम तक पहुंचाया जा सके।
2. धारा 157 IEA (1872) के अन्तर्गत पूर्व कथन के रूप में प्रयोग करते हुए विचारण के दौरान दिये गये बयान को पुष्टि करने के लिए इसका प्रयोग किया जा सकता है।
3. धारा 145 IEA (1872) के अन्तर्गत पूर्व कथन से विरोधाभास प्रकट करने के लिए इसका प्रयोग किया जा सकता है।
4. अपराध के बारे में शीघ्रता शीघ्र सूचना प्राप्त करने के लिए धारा 154 को अधिनियमित किया गया है। अपराध के तुरंत बाद दर्ज करवाये जाने के कारण इस बात की संभावना कम रहती है कि किसी व्यक्ति को झूठा अपराध में फसाया गया हो। अपराध के तुरंत बाद दर्ज करवाये जाने पर न्यायालय इसे अत्यधिक महत्व देता है।
5. उच्चतम न्यायालय के अनुसार एक गवाह द्वारा न्यायालय में दिये गये बयान की अपेक्षा FIR को अधिक महत्व नहीं दिया जा सकता। यह सारभूत साक्ष्य नहीं है क्योंकि दर्ज करवाने वाले व्यक्ति को शपथ नहीं दिलवायी जाती तथा न ही उसकी प्रतिपरीक्षा (Cross Examination) की जाती है।
6. दर्ज करवाने वाले व्यक्ति की मृत्यु हो जाने पर इसे मृत्युकालीन कथन [Section 32 (11) IEA 1872] के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है।
7. धारा 8 IEA (1872) के अन्तर्गत पूर्ववर्ती तथा पश्चात्वर्ती आचरण को स्पष्ट करने के लिए इसका प्रयोग किया जा सकता है।

8 FIR एक लोक दस्तावेज होता है [Section 74 IEA (1872)] तथा इसकी प्रमाणित प्रतिलिपि किसी भी व्यक्ति द्वारा प्राप्त की जा सकती है।

नत्थू सिंह बनाम बिहार राज्य AIR 1973 SC – FIR एक सारभूत साक्ष्य नहीं है। यह एक पूर्वकथन है। अतः इसका प्रयोग मात्र कथनकर्ता के कथन की पुष्टि करने या उसका प्रतिवाद करने के लिए किया जा सकता है।

FIR अन्वेषण की प्रथम अवस्था है यदि FIR दर्ज होने में देरी होती है तो विलंब के कारण का उल्लेख किया जाना चाहिए। यदि विलंब के कारण को स्पष्ट नहीं किया गया है तो अभियोजन के मामले पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। FIR में गवाहों के नाम हो सकते हैं लेकिन यह आवश्यक नहीं है कि उन्हीं व्यक्तियों को गवाह के रूप में पेश किया जाये। अन्य व्यक्तियों को भी गवाह के रूप में पेश किया जा सकता है यदि FIR में अभियुक्त का नाम नहीं है तो अन्यत्र तीव्र असंगति होने पर भी यह अभियुक्त का अच्छा आधार हो सकता है।

Rajwa

अन्वेषण (Investigation)

I. अन्वेषण की शक्ति (धारा 156) :

1. संज्ञेय अपराधों में पुलिस के द्वारा मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना अन्वेषण किया जा सकता है।
2. असंज्ञेय मामलों में पुलिस के द्वारा अन्वेषण तभी किया जा सकता है जब मजिस्ट्रेट ऐसे अन्वेषण का निर्देश दे।
3. Cr.P.C. की धारा 190 के अन्तर्गत मजिस्ट्रेट पुलिस को किसी मामले में अन्वेषण करने का निर्देश दे सकता है।
4. धारा 190 के अन्तर्गत मजिस्ट्रेट अपराध का संज्ञान ले सकता है। संज्ञान लेने से पूर्व की सभी कार्यवाहियों जो पुलिस अधिकारी द्वारा की जाती हैं अन्वेषण कहलाती हैं।

अन्वेषण की धारा 2 (h) में परिभाषित किया गया है। इसके अनुसार पुलिस अधिकारी द्वारा या किसी अन्य प्राधिकृत व्यक्ति के द्वारा किसी अपराध में साक्ष्य को एकत्र करने के लिए की गई कार्यवाही अन्वेषण कहलाती है।

II. अन्वेषण का आरंभ होना :

अन्वेषण प्रारंभ करने के लिए FIR का दर्ज होना आवश्यक नहीं है। यदि पुलिस को यह सूचना मिल जाती है कि कोई अपराध हुआ है तो उसे अन्वेषण करने की शक्ति है। सूचना के आधार पर पुलिस अधिकारी अन्वेषण प्रारंभ करेगा और अपराध के या घटना के स्थल पर जायेगा। मामले या अपराध के तथ्यों और परिस्थितियों का निर्धारण करेगा। (धारा 157)

III. अन्वेषण की कार्यवाही :

अन्वेषण में निम्न कार्यवाहियां सम्मिलित हैं - (1) गिरफ्तारी (2) तलाशी (3) जमानत (धारा 167, यदि जमानतीय है तो धारा 436) (4) रिमाण्ड (धारा 167, 209, 309) (5) व्यक्तियों का परीक्षण (धारा 161) (6) अभियुक्त की संस्वीकृति का अभिलिखित किया जाना (धारा 164) [Sections 24 – 30 IEA] (7) पुलिस डायरी (धारा 172) (8) पुलिस रिपोर्ट [धारा 173 (2)]

(1) गिरफ्तारी (Arrest):

गिरफ्तारी को Cr.P.C. में परिभाषित नहीं किया गया है। किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता को बाधित करना या उसकी शारीरिक स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगाना गिरफ्तारी नहीं है। विधि के प्राधिकार द्वारा या विधि के प्रत्यक्ष प्राधिकार द्वारा विधिमान्य तरीके से सक्षम अधिकारी द्वारा किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता को बाधित किया जाना तथा उसकी शारीरिक स्वतंत्रता पर पूर्ण प्रतिबंध गिरफ्तारी कहलाती है।

गिरफ्तारी का उद्देश्य अभियुक्त की विचारण के दौरान उपस्थिति सुनिश्चित करना है। गिरफ्तारी किसी व्यक्ति को अपराध करने से रोकने के लिए भी की जा सकती है। अनेक बार उचित अभिरक्षा प्रदान करने के लिए भी व्यक्तियों को गिरफ्तार किया जा सकता है। गिरफ्तारी और अभिरक्षा एक दूसरे के पर्यायवाची नहीं है। प्रत्येक गिरफ्तारी में अभिरक्षा होती है परन्तु प्रत्येक अभिरक्षा में गिरफ्तारी नहीं होती।

(2) गिरफ्तारी के प्रकार :

गिरफ्तारी दो प्रकार की हो सकती है –

1. बिना वारंट के गिरफ्तारी
2. वारंट के साथ गिरफ्तारी

1. बिना वारंट के गिरफ्तारी :

बिना वारंट के गिरफ्तारी निम्न व्यक्तियों के द्वारा की जा सकती है -

(a) पुलिस (धारा 41 और 42) (b) प्राइवेट व्यक्ति (धारा 43) (c) मजिस्ट्रेट (धारा 44)

धारा 41 (पुलिस):

पुलिस के द्वारा बिना वारंट के गिरफ्तारी धारा 41 के अनुसार निम्न मामलों में की जा सकती है :-

(क) संज्ञेय अपराध किये जाने पर

(ख) गृहभेदन के सामान पाये जाने पर

(ग) चुराई हुयी संपत्ति (Section 410 IPC) पाये जाने पर, चुराई संपत्ति का अभिप्राय है कोई भी संपत्ति की चोरी, उद्दापन (383), लूट (390), डकैती (391), आपराधिक दुर्विनियोग (धारा 403), आपरांधिक न्यास भंग (405) आदि से प्राप्त की गई हो।

(घ) उद्घोषित अपराधी होने पर (Section 82 Cr.P.C.)
(ड़) भारत के बाहर अपराध किये जाने पर
(च) न्यायिक अभिरक्षा से निकल भाग जाने पर
(छ) सेना का भगोड़ा होने पर
(ज) शान्ति एवं सदाचार बनाए रखने के बन्धपत्र (Bond) की शर्त की अवहेलना करने पर (धारा 106-124)
(झ) परिवीक्षा की शर्त का उल्लंघन करने पर [Section 360 (1) Cr.P.C.]

धारा 42 (पुलिस):

इस धारा के अन्तर्गत असंज्ञेय अपराध की दशा में किसी व्यक्ति को बिना वारंट के गिरफ्तार किया जा सकता है यदि -

(क) अभियुक्त अपना नाम पता बताने से इंकार करे या गलत जानकारी दे।
(ख) यदि उसका नाम पता ज्ञात न हो पाये तो नाम पता ज्ञात करने के लिए उसे बिना वारंट गिरफ्तार किया जा सकता है यदि 24 घंटे में नाम पता सुनिश्चित नहीं होता तो उसे मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया जायेगा।

धारा 43 (प्राइवेट व्यक्ति):

(क) यदि कोई व्यक्ति संज्ञेय और अजमानतीय अपराध करता है तो प्राइवेट व्यक्ति के द्वारा भी उसे गिरफ्तार किया जा सकता है परन्तु शर्त यह है कि अपराध व्यक्ति के सामने हो हो गिरफ्तार करने के बाद उस व्यक्ति के थाने पर ले जाया जायेगा। थाने पर ले जाने के उपरांत यदि पुलिस अधिकारी यह समझता है कि उसने अपराध किया है तो उसे गिरफ्तार कर लिया जायेगा।
(ख) उद्घोषित अपराधी को प्राइवेट व्यक्ति द्वारा गिरफ्तार किया जा सकता है।

धारा 44 (मजिस्ट्रेट):

मजिस्ट्रेट द्वारा ऐसे व्यक्ति को बिना वारंट के गिरफ्तार किया जा सकता है जिसके विरुद्ध उसे गिरफ्तार करने की अधिकारिकता है और वह अपराध उसके क्षेत्राधिकार में हुआ है। अर्थात् मजिस्ट्रेट असंज्ञेय तथा संज्ञेय दोनों मामलों में किसी व्यक्ति को गिरफ्तार कर सकता है।

यदि मजिस्ट्रेट अपने कर्तव्य पालन के अलावा किसी अन्य स्थान पर क्षेत्राधिकार के बिना किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करता है तो वह गिरफ्तारी मजिस्ट्रेट द्वारा की गई गिरफ्तारी नहीं मानी जायेगी। वह प्राइवेट व्यक्ति द्वारा की गई गिरफ्तारी मानी जायेगी (धारा 43)। धारा 45 धारा 41 से 44 की अपवाद है। यदि सेना का कोई अधिकारी अपने कर्तव्य पालन में कोई अपराध करता है तो उसे तब तक गिरफ्तार नहीं किया जायेगा जब तक केन्द्र सरकार की अनुमति न ले ली गई हो।

2. वारंट के साथ गिरफ्तारी :

(1) वारंट : —

मजिस्ट्रेट द्वारा जारी किया गया औपचारिक आदेश जो किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी को प्राधिकृत करता है वारंट कहलाता है (धारा 70)। Cr.P.C. की द्वितीय अनुसूची के फार्म नं. 2 में गिरफ्तारी वारंट का प्रारूप दिया है। धारा 476 के अन्तर्गत हाई कोर्ट भी प्रारूप विहित करने की अधिकारिकता रखता है। यदि उच्च न्यायालय द्वारा गिरफ्तारी वारंट का प्रारूप विहित कर दिया गया है तो अधीनस्थ न्यायालय भी उस प्रारूप का अनुसरण करने के लिए बाध्य है। (अनुच्छेद 227 H.C. की शक्ति)

(2) गिरफ्तारी वारंट की विशेषता :

धारा 70 के अनुसार गिरफ्तारी वारंट की विशेषतायें निम्न हैं :-
(क) यह न्यायालय की भाषा में लिखित होता है। (न्यायालय की भाषा - 272)
(ख) जारी करने वाले मजिस्ट्रेट द्वारा हस्ताक्षरित होता है।
(ग) उस पर न्यायालय की मुहर होती है।

(3) वारंट की अवधि (धारा 70):

धारा 70 के अनुसार जब तक वारंट का निष्पादन न हो जाये या उसे जारी करने वाले न्यायालय द्वारा उसे वापस न ले लिया जाये या खण्डित न कर दिया जाये तब तक वह जारी रहता है। यदि उसमें वारंट के

निष्पादन की अवधि का उल्लेख है तब भी वह अवधि के समाप्ति के उपरांत अपने आप समाप्त नहीं हो जाता।

(4) धारा 72 :

1. गिरफ्तारी वारंट सामान्यत: पुलिस अधिकारी को निर्दिष्ट किया जा सकता है।
2. यदि वारंट का निष्पादन तुरंत किया जाना हो तथा ऐसे समय में पुलिस अधिकारी उपलब्ध न हो तो निष्पादन के लिए वारंट किसी अन्य व्यक्ति को भी दिया जा सकता है। अन्य व्यक्तियों में न्यायालय का अधिकारी या कोई अन्य जिम्मेदार व्यक्ति हो सकता है।
3. वारंट दो या अधिक पुलिस अधिकारियों को भी निर्दिष्ट किया जा सकता है। उनमें से एक या सभी वारंट का निष्पादन कर सकेंगे और उच्च स्तर का पुलिस अधिकारी अपने अधीनस्थ पुलिस अधिकारी को वारंट निष्पादन के लिए अधिकृत कर सकता है।

गिरफ्तारी वारंट भारत राज्यक्षेत्र में किसी भी स्थान पर निष्पादित किया जा सकता है। धारा 71 के अनुसार यदि वारंट जमानतीय हो तथा वह व्यक्ति जमानत देने के लिए तैयार हो तो उसे गिरफ्तार नहीं किया जायेगा। उसके द्वारा भरे गये जमानत पत्र (Bail Bond) को न्यायालय में प्रस्तुत किया जायेगा। यदि वारंट अमानतीय हो तो व्यक्ति को गिरफ्तार करके न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जायेगा।

3. **क्षेत्राधिकार के बाहर वारंट का निष्पादन (धारा 78-79) :**

वारंट को उस स्थान के न्यायालय या अधिकारियों के पास भेजा जाता है और उनके द्वारा उस क्षेत्राधिकार में उसका निष्पादन कर दिया जाता है। वारंट का निष्पादन वहां की पुलिस के द्वारा उसी प्रकार किया जायेगा जैसे उनके अपने अधिकारियों ने वह वारंट जारी किया है।

धारा 79 - यदि पुलिस अधिकारी वारंट को लेकर जाता है तो वह सबसे पहले वहां के थाने के भार साधक अधिकारी के पास जायेगा और थाने के भारसाधक अधिकारी के प्रति हस्ताक्षर या कार्यपालक मजिस्ट्रेट के प्रति हस्ताक्षर करवायेगा। यदि वारंट पर थाने के भारसाधक अधिकारी या कार्यपालक मजिस्ट्रेट के हस्ताक्षर हो जाते हैं तो वहां की पुलिस उसी प्रकार सहयोग देगी जैसे वहां के क्षेत्राधिकार न्यायालय द्वारा वारंट जारी किया गया हो। यदि वारंट लेजाने वाला पुलिस अधिकारी यह समझता है कि देरी के कारण अपराधी भाग जायेगा तो वह बिना प्रतिहस्ताक्षर के भी वारंट का निष्पादन कर सकता है।

4. **गिरफ्तारी का ढंग (धारा 46) :**

(क) जिस व्यक्ति को गिरफ्तार किया जाना है यदि वह अपने आप को पुलिस को समर्पित कर देता है तो पुलिस अधिकारी न तो उसे छुयेगा और न ही परिरुद्ध करेगा।

(ख) यदि वह गिरफ्तारी का विरोध करता है तो उसके विरुद्ध युक्तियुक्त बल का प्रयोग किया जा सकता है।

(ग) यदि गिरफ्तार किया जाने वाला व्यक्ति गिरफ्तारी का विरोध कर रहा है या निकल भागने की कोशिश कर रहा है और उसने जो अपराध किया है वह मृत्युदंड या आजीवन कारावास से दंडनीय है तो पुलिस अधिकारी उसकी मृत्यु कारित कर सकता है।

यदि कोई पुलिस अधिकारी विधि द्वारा दी गई शक्तियों के पालन में अपनी सीमाओं का उल्लंघन करता है तो वह अपराध का दोषी होगा जैसे यदि कोई पुलिस अधिकारी गिरफ्तार किये जाने वाले व्यक्ति की हत्या कर देता है तथा अपराध मृत्यु दंड या आजीवन कारावास से दंडनीय नहीं है तो पुलिस अधिकारी IPC की धारा 300 के अपवाद III के अन्तर्गत सदोष मानव वध का अपराधी होगा। यदि गिरफ्तारी वारंट के द्वारा की जाती है तो गिरफ्तार किये जाने वाले व्यक्ति को वारंट दिखाया जायेगा यदि गिरफ्तारी बिना वारंट के की जाती है तो गिरफ्तारी के कारण को बताया जायेगा। यदि वारंट जमानतीय है तो जमानत पेश करने पर अभियुक्त को छोड़ दिया जायेगा। यदि जमानत पेश नहीं की जाती तो उसे गिरफ्तार करके मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया जायेगा। (धारा 71, 74, 75)

5. **गिरफ्तार करने वाले अधिकारी की शक्तियां :**

(क) संज्ञेय अपराध में बिना वारंट के गिरफ्तार करने की शक्ति। [Section 2 (c)]

(ख) पुन: गिरफ्तार करने की शक्ति।

(ग) मेडिकल परीक्षण के लिए ले जाना यदि परीक्षण का विरोध किया जाता है तो उसका परीक्षण कराने के लिए बल का प्रयोग किया जा सकता है।

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 53 संविधान के अनुच्छेद 20 (3) का विरोध नहीं करती है क्योंकि वैज्ञानिक तरीके से जांच की जाती है कि अभियुक्त किसी अपराध में संलिप्त रहा है या नहीं विधि आयोग ने भी यही कहा है कि धारा 53 गिरफ्तार किये गये व्यक्ति के किसी अधिकार का हनन नहीं करती है।

Article 20 (1) कार्योत्त्तर विधि से सुरक्षा
Article 20 (2) दोहरे दंड से सुरक्षा
Article 20 (3) स्वयं के विरुद्ध गवाही/साक्ष्य देने के लिए बाध्य नहीं करना
(घ) तलाशी लेने की शक्ति।
(ङ) हथियारों को जब्त करने की शक्ति।
(च) हथियार व अन्य वस्तुयें जो जब्त की गई हैं मजिस्ट्रेट के सामने पेश करने का अधिकार।
(छ) 24 घंटे की अवधि तक गिरफ्तार किये गये व्यक्ति को आपनी अभिरक्षा में रखने का अधिकार। [Section 57 Cr.P.C.]
(ज) जमानतीय अपराध में अभियुक्त को जमानत पर छोड़ देने की शक्ति। (धारा 436)
(झ) गिरफ्तार किये गये व्यक्ति की परीक्षा करने की शक्ति। (धारा 161)
(ञ) अन्वेषण करने की शक्ति।

6. गिरफ्तार व्यक्ति के अधिकार :

गिरफ्तार किये गये व्यक्ति को निम्न अधिकार दिये गये हैं :-

1. गिरफ्तारी के कारण को जानने का अधिकार। [Article 22 (1)]
2. 24 घंटे की अवधि में मजिस्ट्रेट के सामने पेश होने का अधिकार - 24 घंटे में यात्रा में लगा समय सम्मिलित नहीं है। [Section 57 Cr.P.C. + Article 22 (2)]
3. विधिक अधिकारिकता के बिना कानूनी अभिरक्षा में नहीं रखे जाने का अधिकार। [Section 167 Cr.P.C.]
4. अपनी इच्छा के अधिवक्ता से सलाह का अधिकार। [Article 22 (1)]
5. मेडिकल परीक्षण करवाने का अधिकार। (धारा 54)
6. जमानतीय अपराधों में जमानत पर छूटने का अधिकार। (धारा 436)
7. अजमानतीय मामलों में भी जमानत पर छूटने का अधिकार जब Cr.P.C. की धारा 167 की अवधि पूरी हो जाये।
8. अपने बचाव का अधिकार [Article 22 (1)]

अवधि - 10 वर्ष से कम सजा के दंडनीय अपराध में यदि अन्वेषण 60 दिन में पूरा न हो तथा मृत्यु दंड आजीवन कारावास या 10 वर्ष से अधिक के कारावास से दंडनीय मामलों में यदि अन्वेषण 90 दिन में पूरा न हो तो जमानत पर छूटने का अधिकार है। 60 या 90 दिन की अवधि उस तिथि से गिनी जायेगी जिस तिथि को प्रथम बार मजिस्ट्रेट के सामने प्रस्तुत किया जाता है।

9. धारा 191 में जब मजिस्ट्रेट स्वयं संज्ञान लें तो मामले के अन्तरण का अधिकार —> इस मामले में संज्ञान Section 190 (1) (c) के अन्तर्गत लिया जाता है।
10. जमानत की अर्जी नामंजूर हो जाने पर अपील करने का अधिकार।
11. निःशुल्क विधिक सहायता प्राप्त करने का अधिकार। [Section 304 Cr.P.C. + Article 39 (a)]

7. **क्षेत्राधिकार के बाहर गिरफ्तार व्यक्ति को जमानत [Sections 80 – 81, main Section 81]:**

जब क्षेत्राधिकार के बाहर वारंट का निष्पादन किया जाता है तो गिरफ्तार किये गये व्यक्ति को वारंट जारी करने वाले न्यायालय के पास तभी ले जाया जाता है जब वह न्यायालय तीस किलोमीटर से अधिक दूरी पर न हो यदि जारीकर्ता न्यायालय तीस किलोमीटर से अधिक दूरी पर हो तो अभियुक्त को उस क्षेत्र के D.S.P. या S.P. या कार्यपालक मजिस्ट्रेट के पास ले जाया जाता है (धारा 80)। कार्यपालक मजिस्ट्रेट, D.S.P. या S.P. इस बात का अन्वेषण करते हैं कि क्या सही वांछित व्यक्ति को गिरफ्तार किया गया है? इस स्थिति में वे उसे वारंट जारीकर्ता न्यायालय के पास भेजने का आदेश देते हैं। यदि अपराध जमानतीय हो तथा गिरफ्तार किया गया व्यक्ति पर्याप्त प्रतिभूति देने के लिए तैयार हो तो D.S.P., S.P. या कार्यपालक मजिस्ट्रेट द्वारा उसे जमानत पर छोड़ा जा सकता है। यदि अपराध अजमानतीय हो तो भी C.J.M. या सेशन न्यायाधीश द्वारा उस व्यक्ति को जमानत पर छोड़ा जा सकता है। यदि धारा 78 (2) के अन्तर्गत उपलब्ध कार्रवाई गई जानकारी से जमानत देना उचित प्रतीत हो और यदि उसे जमानत प्रदान कर दी गई है तो अभियुक्त तथा प्रतिभूओं द्वारा भरे गये बन्धपत्रों को वारंट जारी करने वाले न्यायालय के पास प्रेक्षित किया जाता है। (धारा 81)

8. उद्घोषणा एवं कुर्की (धारा 82-86):

यदि गिरफ्तारी वारंट का निष्पादन नहीं हो पाता है तो अभियुक्त को न्यायालय में उपस्थित होने के लिए बाध्य करने के लिए उद्घोषणा तथा कुर्की की जा सकती है। यह प्रावधान गवाहों और प्रतिभूओं पर भी लागू होते हैं।

(a) फरार व्यक्ति के लिए उद्घोषणा (धारा 82) :

यदि वारंट जारी होने के उपरांत न्यायालय को प्रतीत होता है कि अभियुक्त फरार हो चुका है तथा न्यायालय में उपस्थित नहीं होगा तो न्यायालय यह उद्घोषणा प्रकाशित करवाता है कि अभियुक्त निश्चित समय और स्थान पर न्यायालय में उपस्थित हो इसके लिए अभियुक्त को उद्घोषणा प्रकाशित करने की तिथि से कम से कम तीस दिन का समय दिया जाना चाहिए। यह उद्घोषणा -

1. उस गांव या शहर में प्रकाशित करवाई जानी चाहिए जहां वह सामान्यतः निवास करता है।
2. उसकी एक प्रति उसके घर या शहर के सहज दृश्य स्थानों पर लगाई जानी चाहिए।
3. न्यायालय के सूचना पट पर भी यह सूचना लगायी जानी चाहिए यदि न्यायालय उचित समझे तो समाचार पत्र में भी उद्घोषणा प्रकाशित करवा सकता है। उद्घोषणा वारंट जारी करने के उपरांत तभी की जानी चाहिए जब वारंट का निष्पादन न हो पाया हो।

(b) संपत्ति की कुर्की (धारा 83) :

संपत्ति को कुर्क उसे सजा देने के लिए नहीं किया जाता बल्कि उसकी उपस्थिति को सुनिश्चित करने के लिए किया जाता है। IPC की धारा 174 में वारंट या समन की उपेक्षा करने पर दंड का भी प्रावधान किया गया है। उद्घोषणा जारी होने के उपरांत किसी भी समय अभियुक्त की संपत्ति को कुर्क किया जा सकता है। संपत्ति चल या अचल दोनों प्रकार की हो सकती है। उद्घोषणा व कुर्की साथ-साथ भी की जा सकती है यदि अभियुक्त अपनी संपत्ति को बेचकर भागने की योजना बना रहा हो। संपत्ति की कुर्की आदेश का पृष्ठांकन जिला मजिस्ट्रेट द्वारा (D.M.) द्वारा किया जाना आवश्यक है। संपत्ति की कुर्की प्रापक (रिसीवर) नियुक्त करके उसका कब्जा प्राप्त करके या अन्य युक्तियुक्त तरीके से की जा सकती है यदि उद्घोषणा न की गई हो तो संपत्ति को कुर्क नहीं किया जा सकता। यदि कुर्क की जाने वाली संपत्ति सरकार को भू-राजस्व अदा कर रही हो जैसे - कृषि भूमि तो उसकी कुर्की जिला कलेक्टर के माध्यम से की जानी चाहिए।

(c) कुर्की के बारे में दावे और आपत्तियां :

उद्घोषित अपराधी के अतिरिक्त कोई भी व्यक्ति कुर्क की गई संपत्ति के बारे में दावा या आपत्ति कर सकता है। यह संपत्ति कुर्की की तिथि से 6 माह तक की अवधि में की जा सकती है। न्यायालय द्वारा उसके हित के संबंध में जांच की जायेगी तथा उसका विस्तरण किया जायेगा। यदि उसकी आपत्ति को नामंजूर किया जाता है तो वह एक वर्ष की अवधि में अथवा स्वामित्व स्थापित करने के लिए सिविल न्यायालय में वाद दाखिल कर सकता है। धारा 84 के प्रावधान Order 21, Rule 58 CPC के समान है।

(d) कुर्क संपत्ति की नियुक्ति विक्रय एवं वापसी (धारा 85) :

यदि निश्चित समय में अभियुक्त उपस्थित नहीं होता है तो उसकी संपत्ति को राज्य सरकार द्वारा विक्रय किया जा सकता है परन्तु 6 माह व्यतीत होने से पूर्व उसकी संपत्ति का विक्रय नहीं किया जायेगा। यदि इस दौरान किसी व्यक्ति ने कुर्क संपत्ति के संबंध में दावा या आपत्ति की है तब तक उसके संबंध में विक्रय नहीं किया जायेगा जब तक उन आपत्तियों का निस्तारण न कर दिया जाये। यदि निश्चित समय में उपस्थित हो जाता है तो संपत्ति निर्मुक्त हो जायेगी।

यदि उद्घोषित व्यक्ति दो वर्ष की अवधि में न्यायालय में उपस्थित हो जाता है या गिरफ्तार कर लिया जाता है तथा वह न्यायालय को अपनी अनुपस्थिति का युक्तियुक्त कारण स्पष्ट कर देता है तो उसकी संपत्ति को निर्मुक्त कर दिया जायेगा। यदि संपत्ति का विक्रय कर लिया गया है तो विक्रय विलेख उसे लौटा दिया जायेगा अन्यथा यह विक्रय विलेख राजकोष में जमा हो जायेगा। इस प्रकार पीड़ित व्यक्ति को निम्न चार उपचार उपलब्ध हैं :-

1. दावा और आपत्ति करने का उपचार। (धारा 84)
2. सिविल वाद दायर करके अपने अधिकार को स्थापित करना। (धारा 84)
3. आपत्ति को नामंजूर करने पर अपील करने का अधिकार। (धारा 86)
4. कुछ मामलों में पुनरीक्षण (Revision) याचिका दायर करने का अधिकार। (धारा 397)

9. आदेशिकाओं संबंधी अन्य सामान्य नियम (धारा 87-90):

(a) समन के स्थान पर वारंट जारी किया जाना (धारा 87) :

धारा 87 के अन्तर्गत मजिस्ट्रेट समन के स्थान पर वारंट जारी कर सकता है। इस शक्ति का प्रयोग दो मामलों में किया जा सकता है -

(क) जब मजिस्ट्रेट यह समझता है कि समन भेजने पर व्यक्ति उपस्थित नहीं होगा या फरार हो जायेगा।

(ख) जब अभियुक्त समन भेजने पर बिना किसी युक्तियुक्त कारण के उपस्थित होने में असफल रहता है।

उक्त दोनों अवस्थाओं में कारण अभिलिखित किया जाना चाहिए। न्यायालय वारंट मामलों में भी समन जारी कर सकता है।

पी. के. वैद्या बनाम राज्य 1995 कलकत्ता - धारा 125 के अन्तर्गत कार्यवाही में मजिस्ट्रेट ने एक गवाह को समन की पर्याप्त तामील की। उसके उपरांत भी गवाह उपस्थित नहीं हुआ। मजिस्ट्रेट ने साक्ष्य को बन्द करके निर्णय सुना दिया। उच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि मजिस्ट्रेट का निर्णय गलत है। उसे धारा 87 के अन्तर्गत वारंट जारी करना चाहिए।

(b) हाजिरी के लिए बन्धपत्र लेने की शक्ति (धारा 88) :

यदि वह व्यक्ति जिसकी उपस्थिति के लिए समन या वारंट जारी किया गया है न्यायालय में उपस्थित है तो न्यायालय उससे विचारण में उपस्थिति के लिए बन्धपत्र निष्पादित करवा सकता है। यह बन्धपत्र प्रतिभूओं सहित या प्रतिभूओं रहित हो सकता है।

यदि वह व्यक्ति जिसने उपस्थिति के लिए बन्धपत्र निष्पादित किया है न्यायालय में उपस्थित नहीं होता है तो उसकी उपस्थिति के लिए वारंट जारी किया जा सकता है। (धारा 89)

(2) तलाशी (Search):

तलाशी के उपबन्ध व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार का हनन करते हैं। तलाशी के उपबंध जनतंत्रीय पद्धति का हनन है लेकिन समाज विरोधी और राष्ट्र विरोधी गतिविधियों का विरोध करने या दमन करने के लिए तलाशी के उपबंध वैध माने गये हैं। *(ए. के. गोपालन बनाम मद्रास राज्य AIR 1950 SC Chief Justice कानिया)*

तलाशी से संबंधित उपबंधों को निम्न वर्गों में बांटा जा सकता है :-

(A) तलाशी की शक्ति।

(B) तलाशी वारंट का निष्पादन।

(C) तलाशी की प्रक्रिया।

(A) तलाशी की शक्ति :

तलाशी दो प्रकार की हो सकती है :

(a) बिना वारंट के तलाशी।

(b) वारंट सहित तलाशी।

(a) बिना वारंट के तलाशी :

सामान्य नियम यह है कि तलाशी तभी ली जानी चाहिए जब सक्षम मजिस्ट्रेट के द्वारा तलाशी लेने के लिए वारंट जारी कर दिया गया है परन्तु अपवाद के तौर बिना वारंट भी तलाशी ली जा सकती है। बिना वारंट के तलाशी लेने का अधिकार पुलिस अधिकारियों को ही है जिसे दो वर्गों में बांटा जा सकता है -

(i) क्षेत्राधिकार के अन्दर तलाशी (धारा 165):

संज्ञेय मामले में अन्वेषण करने वाला पुलिस अधिकारी को यदि यह मालूम होता है या विश्वास करने का कारण है कि किसी भवन या परिसर में अपराध से संबंधित कोई वस्तु या साक्ष्य है और वह समझता है कि सामान्य प्रक्रिया का अनुसरण करने में देरी हो सकती है जिसके कारण अपराधी भाग सकता है या साक्ष्य को नष्ट कर सकता है तो ऐसा कारण अभिलिखित करते हुए वह स्वयं उस स्थान, परिसर, भवन पर जा सकता है और बिना वारंट के तलाशी ले सकता है, ऐसी तलाशी Cr.P.C. की धारा 100 के अन्तर्गत ली जाती है।

(ii) क्षेत्राधिकार के बाहर तलाशी (धारा 166):

यदि क्षेत्राधिकार के बाहर किसी भवन या परिसर की तलाशी की आवश्यकता है तो अन्वेषण करने वाला पुलिस अधिकारी वहां के भारसाधक अधिकारी से यह अपेक्षा कर सकता है कि वह उस स्थान की तलाशी ले। यदि इस प्रक्रिया को लागू करने में देरी होने की संभावना है जिसकी वजह से अपराधी भाग जायेगा या साक्ष्य

नष्ट कर दिया जायेगा तो ऐसा कारण अभिलिखित करते हुए वह वहां जा सकता है और तलाशी बिना वारंट के ले सकता है। यह तलाशी भी धारा 100 में वर्णित प्रावधानों के अनुसार ली जायेगी।

प्रश्न - पुलिस अधिकारी बिना वारंट के तलाशी कब ले सकता है?

उत्तर - धारा 100, 165, 166।

(b) वारंट सहित तलाशी :

वारंट के द्वारा तलाशी का अर्थ है कि सक्षम मजिस्ट्रेट के द्वारा जारी किये गये वारंट के निष्पादन में किसी भवन या परिसर की तलाशी लेना। तलाशी वारंट चार आधारों पर जारी किया जा सकता है :-

1. दस्तावेजों या वस्तुओं को पेश करने के लिए। (धारा 91, 92, 93)
2. चुराई हुई संपत्ति या कूटकृत वस्तुओं की तलाशी। (धारा 94)
3. वर्जित प्रकाशनों की तलाशी। (धारा 95, 96)
4. परिरुद्ध या अपहृत व्यक्तियों की तलाशी। (धारा 97, 98)

1. दस्तावेजों या वस्तुओं को पेश करने के लिए (धारा 91-93):

भारतीय साक्ष्य अधिनियम 1872 की धारा 165 के अनुसार मामले के किसी भी प्रक्रम में न्यायालय किसी दस्तावेज या वस्तु की पेश करने का आदेश दे सकता है। यह शक्ति दीवानी न्यायालयों को भी है (Order 16, Rule 6 CPC) और दंड न्यायालय को भी यह शक्ति प्रदान की गयी है (धारा 91)। जब किसी अन्वेषण, जांच या विचारण के दौरान किसी दस्तावेज या वस्तु की आवश्यकता है और पुलिस अधिकारी या न्यायालय यह जानता है या ऐसा विश्वास करने का कारण है कि दस्तावेज किसी व्यक्ति के कब्जे में है तो ऐसा पुलिस अधिकारी उस व्यक्ति के लिए लिखित आदेश जारी कर सकता है। न्यायालय ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध समन भी जारी कर सकता है। यदि किसी व्यक्ति के नाम लिखित आदेश या समन जारी कर दिया गया है तो वह व्यक्ति उस दस्तावेज या वस्तु को पेश करने के लिए बाध्य होता है लेकिन वह व्यक्तिगत रूप से आने के लिए बाध्य नहीं है (Section 139, IEA 1872)। वह उस दस्तावेज या वस्तु को डाक या अन्य साधन से भेज सकता है यदि उसे साक्षी के रूप में समन किया गया है तो वह व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होने के लिए बाध्य होगा लेकिन निम्न के बारे में ऐसा लिखित आदेश या समन जारी नहीं किया जा सकता :-

(क) ऐसा कोई भी दस्तावेज जिसके विषय में साक्ष्य अधिनियम की धारा 123 व 124 लागू होती है। (धारा 123 - राज्य के कार्यकलाप के बारे में साक्ष्य, धारा 124 शासकीय संसूचनायें)

(ख) कोई दस्तावेज या वस्तु जो डाक अथवा तार विभाग के अधिकारियों के कब्जे में है। ऐसे दस्तावेज या वस्तु जो डाक अथवा तार विभाग के अधिकारियों के कब्जे में है तो उनके लिए लिखित आदेश या समन कुछ पुलिस अधिकारी या न्यायालय जारी कर सकते हैं। H.C., Session Court, C.J.M., S.P. आदि।

मजिस्ट्रेट डाक तार विभाग के अधिकारियों को किसी दस्तावेज या वस्तु को रोकने का निर्देश दे सकता है। धारा 93 ऐसे मामलों में तलाशी वारंट का प्रावधान करती है। भारत राज्यक्षेत्र के बाहर भी किसी व्यक्ति के कब्जे में कोई दस्तावेज या वस्तु है जो भारत सरकार द्वारा बनाये नियमों के आधार पर उनको पेश करने का आदेश दिया जा सकता है। विदेशी न्यायालय भी भारत में रहने वाले किसी व्यक्ति के कब्जे में किसी वस्तु या दस्तावेज को पेश करने का आदेश दे सकता है।

2. चुराई हुई संपत्ति या कूटकृत वस्तुओं की तलाशी (धारा 94):

यदि सूचना मिलती है या विश्वास करने का कारण है कि चुरायी हुई संपत्ति, कूटकृत वस्तुएं या उनको बनाने के उपकरण या औजार किसी स्थान पर रखे हुए हैं तो जिला मजिस्ट्रेट या उपखण्ड मजिस्ट्रेट या न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम वर्ग के द्वारा ऐसी वस्तुओं की तलाशी के लिए तलाशी वारंट जारी किया जा सकता है।

3. वर्जित प्रकाशनों की तलाशी (धारा 95, 96):

भारत के सभी नागरिकों को भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता है। इसमें प्रेस की स्वतंत्रता भी सम्मिलित है [Article 19 (1) (a)]। व्यक्तियों को किसी भी माध्यम से अपने विचार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता है लेकिन भाषण अभिव्यक्ति प्रेस प्रकाशन का मूल अधिकार असीमित नहीं है क्योंकि राज्य के द्वारा अनुच्छेद 19 (2) के अन्तर्गत इस स्वतंत्रता पर युक्तियुक्त प्रतिबंध लगाये जा सकते हैं। राज्य की संप्रभुता के विरुद्ध लोक आधार एवं नैतिकता के विरुद्ध अखंडता, लोक व्यवस्था एवं सदाचार आदि के विरुद्ध यदि कोई प्रकाशन किया जाता है तो उसके विरुद्ध तलाशी वारंट जारी किया जा सकता है।

(क) धारा 95 यह विहित करती है कि यदि किसी प्रकाशन में ऐसी विषयवस्तु है जो राज्य के विरुद्ध अपराध शान्ति के विरुद्ध अपराध, लोक व्यवस्था के विरुद्ध या अश्लील सामग्री के रूप में है तो राज्य सरकार ऐसी प्रकाशन को वर्जित कर सकती है।

(ख) राज्य सरकार के द्वारा इस प्रकार की रोक अधिसूचना के द्वारा जारी की जाती है जिसका प्रकाशन राजपत्र में किया जाता है।

(ग) ऐसे प्रकाशन का स्वामी या संपादक अधिसूचना की तिथि से दो माह की अवधि में अधिसूचना को चुनौती दे सकता है।

(घ) अधिसूचना को चुनौती उच्च न्यायालय में दी जायेगी।

(ड़) ऐसी अधिसूचना की सुनवाई न्यायालय के कम से कम तीन न्यायाधीशों द्वारा की जायेगी। यदि उच्च न्यायालय में तीन से कम न्यायाधीश हों तो न्यायालय के सभी न्यायाधीशों द्वारा मामले का निस्तारण किया जायेगा।

(च) यदि उच्च न्यायालय अधिसूचना को व्यर्थ घोषित करता है तो प्रकाशन आरंभ हो जायेगा यदि अधिसूचना को वैध मान लिया जाता है तो प्रकाशन बन्द हो जायेगा।

यदि न्यायालय को सूचना दी जाती है कि किसी भवन में इस प्रकार का प्रकाशन हो रहा है तो जिला मजिस्ट्रेट, उपखण्ड मजिस्ट्रेट या न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम वर्ग द्वारा तलाशी वारंट जारी किया जायेगा।

4. परिरुद्ध या अपहृत व्यक्तियों की तलाशी (धारा 97-98):

धारा 97 - यदि न्यायालय को सूचना मिलती है कि किसी व्यक्ति को किसी भवन या परिसर में परिरुद्ध या अपहृत किया गया है तो ऐसे व्यक्ति की तलाशी के लिए तलाशी वारंट जारी किया जा सकता है। यह वारंट न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम वर्ग, D.M. या S.D.M. द्वारा जारी किया जा सकता है यदि तलाशी में व्यक्ति मिल जाता है तो उसे मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया जायेगा और ऐसे व्यक्ति की अभिरक्षा के बारे में न्यायालय जो उचित समझे आदेश देगा।

धारा 98 - यदि किसी व्यक्ति द्वारा शपथ पर परिवाद इस आशय को पेश किया जाता है कि इस स्थान पर किसी महिला या 18 वर्ष से कम आयु की स्त्री को अवैध कार्य के लिए परिरुद्ध किया है तो न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम वर्ग, D.M. और S.D.M. तलाशी वारंट जारी करके उन्हें स्वतंत्र करा सकता है। अवयस्क लड़की को उसके माता पिता या संरक्षक की अभिरक्षा में रहने का निर्देश भी जारी किया जाता है।

(B) तलाशी वारंट का निष्पादन :

Cr.P.C. की अनुसूची II में प्रारूप सं. 10 व 11 में तलाशी वारंट के प्रारूप दिया गया है और धारा 476 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय के द्वारा भी इस प्रकार के प्रारूप विहित किये जा सकते हैं। यदि HC द्वारा संविधान के अनुच्छेद 227 सपठित धारा 476 Cr.P.C. के अन्तर्गत तलाशी वारंट का कोई प्रारूप विहित किया गया है तो ऐसी दशा में अधीनस्थ न्यायालयों के द्वारा ऐसे प्रारूप को लागू किया जाता है। गिरफ्तारी वारंट संबंधी प्रावधान (धारा 38, 70, 72, 74, 77, 78, 79) तलाशी वारंट के संबंध में भी लागू होते हैं। (धारा 99)

(C) तलाशी की प्रक्रिया (धारा 38, 47, 101, 102, 103, 104, 105):

1. पुलिस अधिकारी द्वारा उस स्थान पर जाया जाना जहां तलाशी ली जानी है चाहे उसके पास वारंट हो या न हो।
2. कम से कम दो जिम्मेदार व्यक्तियों को साक्षी के रूप में लेना (उस मुहल्ले से या दूसरे मुहल्ले से)।
3. पुलिस अधिकारी द्वारा उस भवन या परिसर के स्वामी या अधियोगी को तलाशी के बारे में बताया जाना यदि तलाशी वारंट है तो वारंट दिखायो जाना।
4. स्वामी या अधिभोगी का कर्तव्य है कि वह अधिकारी को प्रवेश करने दे और तलाशी लेने दे। यदि विरोध किया जाता है तो परिसर में दरवाजे या खिड़कियां तोड़कर प्रवेश किया जा सकता है।
5. यदि पुलिस अधिकारी को कमरे में बन्द कर दिया गया है तो वह खिड़की या दरवाजे तोड़कर बाहर आ सकता है।
6. यदि कोई पर्दानशीन स्त्री है तो पुलिस अधिकारी उसको हटने की अनुमति देगा। यदि वह स्वयं अपराधी है तो उसे हटने का अवसर नहीं दिया जायेगा। जब किसी स्त्री की तलाशी लेनी हो तो किसी अन्य स्त्री द्वारा तलाशी शिष्टता से ली जायेगी। तलाशी के दौरान पायी गई वस्तुओं को एकत्र

कर सूची बनाई जाएगी और उनकी पैकिंग एवं सील करके उन पर साक्षी के हस्ताक्षर करवाये जायेंगे और सूची पर भी हस्ताक्षर करवाये जायेंगे।

7. तलाशी के समय संपत्ति के स्वामी को वहां खड़े रहने का अधिकार है।
8. मजिस्ट्रेट चाहे तो अपनी उपस्थिति में तलाशी लिये जाने का निर्देश दे सकता है। (धारा 103)
9. तलाशी के दौरान पाई गई वस्तुओं को न्यायालय के समक्ष पेश किया जायेगा।
10. यदि उस वस्तु को न्यायालय में पेश करना संभव न हो तो किसी उत्तरदायी व्यक्ति को यह कार्य सौंपा जा सकता है। वह आवश्यकता पड़ने पर वस्तु को न्यायालय में प्रस्तुत करेगा तथा उसकी उचित अभिरक्षा करेगा।

उक्त वर्णन से स्पष्ट है कि तलाशी की प्रक्रिया प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्त पर आधारित है।

(3) साक्षियों का परीक्षण (धारा 160-162):

1. साक्षियों को बुलाने की शक्ति (धारा 160):

अन्वेषण करने वाला पुलिस अधिकारी गवाहों को थाने में बुला सकता है। उनको बुलाने के लिए लिखित में आदेश जारी कर सकता है। इस उद्देश्य के लिए किसी भी स्त्री या 15 वर्ष से कम आयु के पुरुष को थाने पर आने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। उनके बयान उनके घर पर जाकर record किये जा सकते हैं।

2. थाने पर बुलाये गये व्यक्तियों की परीक्षा (धारा 161):

धारा 160 के अन्तर्गत जिन व्यक्तियों को थाने पर बुलाया गया है या जो साक्षी के रूप में उपस्थित होते हैं उनकी पुलिस अधिकारी धारा 161 के अन्तर्गत परीक्षा कर सकता है। जिस व्यक्ति की परीक्षा की जा रही है वह सभी प्रश्नों का उत्तर देने के लिए आबद्ध है लेकिन वह ऐसे प्रश्नों का उत्तर देने के लिए बाध्य नहीं है जो उसे अपराध में संलिप्त करने की प्रवृत्ति देखते हों। [अनुच्छेद 20 (3)]

3. पुलिस अधिकारी द्वारा बयान अभिलिखित किया जाना (धारा 162):

धारा 162 का सिद्धान्त यह है कि अन्वेषण के दौरान अभिलिखित किये गये कथनों पर न तो कथनकर्ता के हस्ताक्षर करवाये जायेंगे और न ही उन्हें न्यायालय के सामने साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया जायेगा।

4. धारा 161 के बयानों के प्रयोग व उपयोगिता :

धारा 161 के अन्तर्गत रिकार्ड किये गये बयानों की उपयोगिता निम्नलिखित है :-

1. धारा 27 IEA 1872 के अन्तर्गत किसी तथ्या या वस्तु की खोज हो जाने पर उनका प्रयोग किया जा सकता है।
2. धारा 32 (1) से 32 (8) IEA 1872 के अन्तर्गत किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाने पर उनका प्रयोग किया जा सकता है।
3. धारा 145 IEA 1872 के अन्तर्गत प्रतिवाद करने के लिए तथा धारा 157 IEA 1872 (पुष्टि) के अन्तर्गत पूर्व कथन के रूप में इनका प्रयोग किया जा सकता है।
4. धारा 159 IEA 1872 के अन्तर्गत पुलिस अधिकारी बयान देते समय अपनी स्मृति को ताजा करने के लिए इनका प्रयोग कर सकता है।

(4) रिमाण्ड (धारा 169, 209, 309):

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 22 (2) गिरफ्तार व्यक्ति को 24 घंटे से अधिक विरुद्ध न किये जाने का संवैधानिम अधिकार प्रदान करता है। इसी बात को ध्यान में रखकर Cr.P.C. की धारा 57 में भी यह उपबंध किया गया है कि कोई पुलिस अधिकारी वारंट के बिना गिरफ्तार किये गये व्यक्ति को इससे अधिक अवधि के लिए अभिरक्षा के विरुद्धद्ध नहीं करेगा जो उस मामले की परिस्थितियों में उचित है तथा ऐसी अवधि मजिस्ट्रेट के धारा 167 के अधीन विशेष आदेश के अभाव में गिरफ्तारी के स्थान से मजिस्ट्रेट के न्यायालय तक की यात्रा के लिए आवश्यक समय को छोड़कर 24 घंटे से अधिक नहीं होगी। धारा 167 में धारा 57 और अनुच्छेद 22 (2) का अपवाद दिया है। धारा 167 में उस प्रक्रिया का उल्लेख किया गया है जब 24 घंटे के अन्दर अन्वेषण पूरा न हो सके जिस मजिस्ट्रेट के समक्ष अभियुक्त को पेश किया जाता है वह उसको पुलिस या न्यायिक अभिरक्षा में रखे जाने का जैसा वह उचित समझे आदेश दे सकता है। इस प्रकार के आदेश को प्रचलित भाषा में रिमाण्ड = प्रतिप्रेषण कहते हैं। रिमाण्ड को Cr.P.C. में परिभाषित नहीं किया गया है। रिमाण्ड शब्द का प्रयोग धारा 209 (संज्ञान लेने के उपरांत मामला सेशन न्यायाधीश को सुपुर्द करना) तथा

धारा 309 (जांच या विचारण के दौरान अभियुक्त को न्यायिक अभिरक्षा में देखना) में किया गया है। पुलिस की अभिरक्षा में रखने का आदेश देते समय वह उसके औचित्य के विषय में कारण भी लिखेगा। इस प्रकार का आदेश तभी दिया जाना चाहिए जब कि यह पूर्ण रूप से आवश्यक हो और इसकी अवधि कम से कम रखी जानी चाहिए क्योंकि विधि ऐसी अभिरक्षा को उचित नहीं समझती। यदि पुलिस अभिरक्षा में रखे जाने का आदेश C.J.M. से भिन्न किसी अन्य मजिस्ट्रेट ने दिया है तो वह अपने आदेश की प्रतिलिपि C.J.M. को भेजेगा।

रिमाण्ड का आदेश देते समय मजिस्ट्रेट न्यायिक कार्यवाही करते हैं। इसलिये उनको इस प्रकार का आदेश देते समय उसके समक्ष पेश किये गये अभिलेखों को ध्यान से देखना चाहिए। यदि वह संतुष्ट हो कि गिरफ्तारी वैध है और अन्वेषण हेतु समय की आवश्यकता है तभी रिमाण्ड का आदेश दिया जाना चाहिए। रिमाण्ड का आदेश प्राप्त करने के लिए अभियुक्त को मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत किया जाना अत्यंत आवश्यक है, तथापि जहां अभियुक्त को न्यायालय में प्रस्तुत किया जाना संभव न हो जैसे - अभियुक्त का अत्यधिक बीमार होना, गंभीर रूप से घायल होना, कर्फ्यू लगा होना आदि। वहां अभियुक्त को पेश किये बिना रिमाण्ड अवैध नहीं है।

पुलिस अभिरक्षा :

पुलिस अभिरक्षा के लिए अधिक से अधिक 15 दिन का रिमाण्ड दिया जा सकता है। यह भी सामान्यतः एक समय एक साथ नहीं दिया जाता। इस प्रकार थोड़े-थोड़े समय के लिए दिया गया रिमाण्ड कुल मिलाकर 15 दिन से अधिक नहीं हो सकता।

न्यायिक अभिरक्षा :

जब अपराध मृत्यु दण्ड आजीवन कारावास या 10 वर्ष से अन्यून अवधि के कारावास से दंडनीय हो तब रिमाण्ड अधिक से अधिक 90 दिनों के लिए किया जा सकता है। और जब अपराध 10 वर्ष से कम के कारावास से दंडनीय हो तो रिमाण्ड कुछ मिलाकर 60 दिनों की अवधि के लिए किया जा सकता है। धारा 309 के अनुसार एक बार में 15 दिन से अधिक का रिमाण्ड नहीं दिया जाना चाहिए। उपरोक्त वर्णित 60 दिन 90 दिनों की अवधि समाप्त हो जाने के उपरांत भी अभियुक्त को तब तक अभिरक्षा में विरुद्ध रखा जायेगा जब तक वह जमानत नहीं दे देता।

यदि नियत अवधि के अन्दर कोई आरोप पत्र या चालान पुलिस ने दाखिल नहीं किया है तो अभियुक्त को यह अधिकार हो जाता है कि वह जमानत पर छूट सके लेकिन यदि अभियुक्त जमानत नहीं मांगता तो उसका विरोध अवैध नहीं हो जाता। यदि नियत अवधि के बाद थी किन्तु अभियुक्त द्वारा जमानत के लिए आवेदन देने से पूर्व चालान प्रस्तुत कर दिया जाता है तो धारा 167 के अन्तर्गत उसका जमानत लेने का अधिकार समाप्त हो जाताहै तब वह गुणावगुण के आधार पर धारा 437 के अधीन जमानत के लिए आवेदन कर सकता है। धारा 167 (2) के परन्तुक (1) और (2) के अधीन क्रमशः 90 दिनों और 60 दिनों की अवधि की संगणना गिरफ्तारी के दिन से नहीं बल्कि रिमाण्ड के दिन से आरंभ होती है।

धारा 209 के अन्तर्गत अपराध का संज्ञान लेने के उपरांत मामला सेशन न्यायाधीश के पास सुपुर्द किया जाता है। सुपुर्द करने की प्रक्रिया पूर्ण होने के उपरांत तथा अभियुक्त को सेशन न्यायाधीश के पास पेश करने की बीच की अवधि के लिए मजिस्ट्रेट द्वारा अभियुक्त को न्यायिक अभिरक्षा के रिमांड किया जाता है। धारा 209 के अन्तर्गत रिमाण्ड आरोप विरचित करने के पूर्व किया जाता है। जबकि धारा 309 के अन्तर्गत रिमाण्ड आरोप विरचित करने के उपरांत दिया जाता है। धारा 309 के अन्तर्गत अभियुक्त के जमानत पर छूटने के उपरांत भी मजिस्ट्रेट को यह शक्ति है कि जब वह मामले को सेशन न्यायाधश को सुपुर्द करे तब उसे अभिरक्षा में लेकर सेशन न्यायालय के सामने उपस्थित होने का आदेश दे।

सारांश में अभिरक्षा के तीन अवसर होते हैं :-

1. प्रथम चौबीस घंटे - इसमें पुलिस को पूर्ण अधिकार है कि वह अभियुक्त को अन्वेषण करने के उद्देश्य से कहीं भी ले जाये या रखे।
2. इसके पश्चात् 15 दिन - इसके लिए मजिस्ट्रेट के समक्ष अभियुक्त को प्रस्तुत किया जाता है। पुलिस अभिरक्षा में अधिकतम 15 दिनों की अवधि के लिए ही रखा जाता है। यह रिमाण्ड 15 दिनों के लिए एक साथ या अलग-अलग अवधियो (कुल मिलाकर 15 दिन) के लिए दिया जा सकता है।

3. 15 से 60 दिन या 90 दिन - इसके दौरान अभियुक्त को न्यायिक अभिरक्षा में रखा जाता है यदि अन्वेषण इस दौरान भी पूर्ण न हो तो अभियुक्त धारा 167 के अन्तर्गत जमानत पर छूटने का अधिकार प्राप्त कर लेता है।

(5) संस्वीकृति (Confession) (Section 164, Cr.P.C.):

(a) संस्वीकृति (अभिप्राय) :

भारतीय साक्ष्य अधिनियम 1872 या Cr.P.C. में संस्वीकृति को परिभाषित नहीं किया गया है। चैम्बर्स शब्दकोष में संस्वीकृति का अभिप्राय "Acknowledgement of guilt" दिया गया है। इसका अभिप्राय है अभियुक्त के द्वारा अपने अपराध को स्वीकार किया जाना अर्थात् जब अभियुक्त अपने अपराध को स्वीकार करने का कथन करता है अथवा ऐसा कथन करता है जिससे उसका आपराधिक दायित्व उत्पन्न हो तो ऐसा कथन संस्वीकृति कहलाता है। संस्वीकृति के बारे में विस्तृत प्रावधान I.E.A. 1872 की धारा 24 से 30 में दिये गये हैं।

(b) न्यायिक संस्वीकृति :

सक्षम मजिस्ट्रेट के समक्ष अन्वेषण या जांच के दौरान अभियुक्त द्वारा की गई संस्वीकृति जिसे Cr.P.C. की धारा 164 के अन्तर्गत अभिलिखित किया गया हो, न्यायिक संस्वीकृति कहलाती है।

(c) प्रक्रिया (Section 164 Cr.P.C.):

भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 26 और Cr.P.C. की धारा 164 में न्यायिक संस्वीकृति के विषय में विस्तृत उपबंध किये गये हैं। इसको निम्न प्रक्रिया द्वारा अभिलिखित किया जाता है

1. अभियुक्त की संस्वीकृति अभिलिखित करने की शक्ति न्यायिक मजिस्ट्रेट अथवा महानगर मजिस्ट्रेट को है। कार्यपालक मजिस्ट्रेट को यह शक्ति प्राप्त नहीं है।
2. यदि किसी पुलिस अधिकारी को मजिस्ट्रेट की शक्तियां प्रदान की गई हैं तो भी वह अभियुक्त की संस्वीकृति अभिलिखित नहीं कर सकता।
3. संस्वीकृति अभिलिखित करने वाले मजिस्ट्रेट को संतुष्ट होना चाहिए कि अभियुक्त स्वेच्छापूर्वक और बिना किसी दबाव के ऐसा कथन कर रहा है। इसके लिए धारा 313 Cr.P.C. के अन्तर्गत उसकी परीक्षा अपेक्षित है।
4. यदि मजिस्ट्रेट यह समझता है कि अभियुक्त स्वेच्छा से कथन कर रहा है तो उसे चेतावनी देगा कि वह संस्वीकृति करने के लिए बाध्य नहीं है और यदि वह करता है तो ऐसे कथन को उसके विरुद्ध साक्ष्य में लिया जाकर उसे दोषसिद्धि और दण्डित किया जा सकता है।
5. यदि अभियुक्त कथन करने से मना कर दे मजिस्ट्रेट उसे पुलिस अभिरक्षा में नहीं भेजेगा परन्तु उसे न्यायिक अभिरक्षा में रखा जा सकता है।
6. यदि अभियुक्त कथन करता है तो ऐसे कथन को मजिस्ट्रेट द्वारा या उसके निर्देशन में अभिलिखित किया जायेगा। यह आवश्यक नहीं है कि उस मामले में मजिस्ट्रेट को क्षेत्राधिकार हो।
7. कथन पूरा होने पर उसे पढ़कर सुनाया जायेगा। आवश्यकता हो तो उसे समझाया जायेगा और उस पर अभियुक्त के हस्ताक्षर करवाये जायेंगे।
8. उपरोक्त के बाद अन्त में मजिस्ट्रेट उस स्थान पर अपना ज्ञापन लिखेगा कि अभियुक्त ने स्वेच्छापूर्वक अपना कथन दिया है। अभियुक्त को चेतावनी दे दी गई थी और यह कथन धारा 164 में विहित प्रक्रिया के अनुरूप अभिलिखित किया गया है। इसके बाद मजिस्ट्रेट द्वारा हस्ताक्षर किये जाते हैं और मुहर लगायी जाती है।
9. संस्वीकृति के ऐसे दस्तावेज को विचारण करने वाले न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। न्यायालय I.E.A. 1872 की धारा 80 के अन्तर्गत ऐसे कथन की सत्यता की उपधारणा करेगा।
10. संस्वीकृति के ऐसे दस्तावेज को साक्ष्य अधिनियम की धारा 91 के अन्तर्गत पेश किया जाना आवश्यक है। यदि ऐसा दस्तावेज पेश किया गया है या साबित कर दिया गया है तो उस दस्तावेज की अन्तर्वस्तु के विरुद्ध धारा 92 I.E.A. 1872 में वर्णित अपवादों के अतिरिक्त मौखिक साक्ष्य नहीं दिया जा सकता अर्थात् अभियुक्त के द्वारा संस्वीकृति को अभिलिखित किये जाने के प्रक्रियात्मक पहलुओं की अनियमितता का साक्ष्य दिया जा सकता है।

11. Cr.P.C. की धारा 463 से स्पष्ट है कि जब ऐसी संस्वीकृति की वैधता या ग्राह्यता को अनियमितता के आधार पर चुनौती दी जाती है तथा न्यायालय यह समझता है कि ऐसी गलती या अनियमितता के कारण अभियुक्त के विरुद्ध अन्याय हुआ है तो ऐसी संस्वीकृति को साक्ष्य में ग्राह्य नहीं माना जायेगा।

रामचन्द्र बनाम उ.प्र. AIR 1957 SC - संस्वीकृति अभिलिखित किये जाने से पहले मजिस्ट्रेट द्वारा अभियुक्त को चेतावनी दिया जाना आवश्यक है। यदि यह साबित हो जाता है कि चेतावनी नहीं दी गई तो केवल ऐसे कथन के आधार पर अभियुक्त को दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता।

शंकरिया बनाम राजस्थान AIR 1978 SC – Cr.P.C. में ऐसा कोई उपबन्ध नहीं है कि न्यायिक संस्वीकृति को अभिलिखित किये जाने से पहले अभियुक्त को पुलिस अभिरक्षा से निकाल कर न्यायिक अभिरक्षा में रखा जाये और उसने 24 घंटे के पश्चात् मजिस्ट्रेट के द्वारा संस्वीकृति अभिलिखित की जाये। अतः मजिस्ट्रेट के द्वारा पुलिस अभिरक्षा में भी संस्वीकृति अभिलिखित की जा सकती है परन्तु ऐसे समय मजिस्ट्रेट को सन्तुष्ट होना चाहिए कि अभियुक्त स्वेच्छापूर्वक कथन कर रहा है।

(6) पुलिस डायरी (धारा 172) :

(a) पुलिस डायरी :

राज्य सरकार द्वारा विहित ऐसी डायरी है जिसमें अन्वेषण करने वाले पुलिस अधिकारी द्वारा अन्वेषण की कार्यवाही अंकित की जाती है।

(b) महत्व :

निम्न दो कार्यों में इसका महत्व है :-

1. अभियुक्त के विरुद्ध आरोप की रचना करते समय न्यायालय इसे देख सकेगा है।
2. अपनी परीक्षा के समय पुलिस अधिकारी स्मृति ताजा करने के लिए उसको प्रयोग कर सकेगा है। (Section 159 I.E.A. 1872)

इसके अतिरिक्त I.E.A. 1872 की धारा 32, 145, 157, 154 के अन्तर्गत भी पुलिस डायरी में अंकित जानकारी का प्रयोग भी किया जा सकता है।

(7) पुलिस रिपोर्ट/Final Report (FR)/अन्तिम रिपोर्ट [Section 173 (2) Cr.P.C.]:

(a) अभिप्राय :

प्रत्येक अन्वेषण बिना विलम्ब पूर्ण किया जाना चाहिए और अन्वेषण पूर्ण हो जाने के उपरांत पुलिस अधिकारी उस मामले की सारी रिपोर्ट सक्षम मजिस्ट्रेट को भेजता है।

जब अन्वेषण पूर्ण हो जाये और अभियुक्त के विरुद्ध अपराध के साक्ष्य मिले तो उन्हें धारा 173 के अन्तर्गत न्यायालय के सामने प्रस्तुत किया जाता है जिसमें अपराध के विषय में गिरफ्तारी के विषय में अभियुक्त को जमानत पर छोड़ा गया है या नहीं और अन्य सबूतों की सूचना दी जाती है। इसे ही पुलिस रिपोर्ट/अन्तिम रिपोर्ट/FR या चालान कहते हैं।

(b) महत्व :

पुलिस रिपोर्ट कोई सारभूत साक्ष्य नहीं है। न्यायालय द्वारा आरोप को विरचित करते समय इसका निरीक्षण किया जाता है। अभियुक्त के विरुद्ध प्रथम दृष्टतया मामला बनाने के लिए इसका प्रयोग किया जा सकता है।

(8) जमानत [Section 167 Cr.P.C. + 436, 437, 438, 439]:

विस्तृत जानकारी अध्याय 11 में दी गई है।

परिसीमा अवधि (धारा 467-473)

I. भूमिका :

1898 की दण्ड प्रक्रिया संहिता में परिसीमा अवधि से संबंधित कोई प्रावधान नहीं था। पर् 1973 में संहिता में परिसीमा का नियम लागू किया गया। दाण्डिक मामलों में परिसीमा का मूल सिद्धान्त यह है कि पुलिस रिपोर्ट या परिवाद के आधार पर संस्थित मामलों में परिसीमा अवधि व्यतीत हो जाने के बाद किसी मामले का संज्ञान नहीं लिया जा सकता।

II. परिसीमा अवधि (धारा 468) :

1. यदि अपराध केवल जुर्माने से दण्डनीय है तो परिसीमा अवधि 6 माह है।
2. यदि अपराध 1 वर्ष तक के कारावास से दण्डनीय है तो परिसीमा अवधि 1 वर्ष है।
3. यदि अपराध 3 वर्ष से दण्डनीय है तो परिसीमा अवधि 3 वर्ष है।
4. यदि अपराध 3 वर्ष से अधिक कारावास या मृत्युदण्ड से दण्डनीय है तो परिसीमा की कोई अवधि नहीं है।
5. यदि कोई व्यक्ति दो या दो से अधिक अपराधों का अभियुक्त है तो ऐसी दशा में परिसीमा की गणना उस अपराध के आधार पर की जायेगी जो अधिक दण्ड से दण्डनीय है।
6. आर्थिक अपराध परिसीमा अपवर्जन अधिनियम 1974 में उन अधिनियमों को दिया गया है जिनके अन्तर्गत किये गये अपराधों के विषय में परिसीमा का नियम लागू नहीं होता चाहे ऐसे अपराधों के लिए कितना ही दण्ड क्यों न निश्चित हो।

III. परिसीमा अवधि प्रारंभ होना (धारा 469) :

1. आपराधिक मामलों में परिसीमा अवधि उस दिन से प्रारंभ होती है जिस दिन अपराध किया गया था या
2. जिस दिन अपराध कारित किये जाने के बारे में जानकारी प्राप्त होती है या
3. यदि अभियुक्त की पहचान न हो पायी हो तो परिसीमा अवधि उस दिन से गिनी जायेगी जिस दिन अभियुक्त की पहचान हुयी है।

IV. परिसीमा अवधि की गणना से संबंधित नियम :

1. जिस दिन परिसीमा अवधि आरंभ होती है उस दिन को परिसीमा अवधि में नहीं गिना जायेगा। (धारा 467)
2. परिसीमा अवधि के अन्तिम दिन यदि न्यायालय बन्द हो तो परिसीमा अवधि उस दिन तक बढ़ जायेगी जब न्यायालय पुनः खुलता है। (धारा 471)
3. निम्न अवधि को परिसीमा की गणना में सम्मिलित नहीं किया जायेगा :-
   (क) यदि अभियुक्त के विरुद्ध किसी अन्य न्यायालय में आपराधिक कार्यवाही चल रही हो जितने समय तक वह कार्यवाही चल रही है उस समय को नहीं गिना जायेगा।
   (ख) यदि किसी न्यायालय या अधिकार के आदेश से कार्यवाही को रोक दिया गया है तो रोज गया समय परिसीमा अधिनियम में नहीं गिना जायेगा।
   (ग) यदि अपराधी भारत से बाहर चला गया है तो वह जितने समय तक भारत से बाहर रहा है उतने समय को नहीं गिना जायेगा।
   (घ) यदि अभियोजन करने के लिए सम्मुचित सरकार की अनुमति की आवश्यकता है तो जितना समय ऐसी अनुमति लेने में लगा है उसे नहीं गिना जायेगा। (धारा 470)

V. लगातार चलने वाले अपराध (धारा 472) :

लगातार चलते रहने वाले अपराधों में हर पल नया परिसीमा काल प्रारंभ होता है।

VI. परिसीमा काल का विस्तार (धारा 473) :

न्यायालय की विवेकाधीन शक्ति है कि वह परिसीमा अवधि के उपरांत भी किसी अपराध का संज्ञान निम्न दो परिस्थितियों में ले सकता है :-

1. जब न्याय हित में ऐसा किया जाना उचित हो।
2. जब विलम्ब से परिवाद दायर करने का या चालान पेश करने का कोई युक्तियुक्त कारण हो।

मजिस्ट्रेट की परिवाद

[Section 2 (d), Section 155, Section 156 (3), Section 190 (1) (a), 200 – 203]

I. परिचय :

परिवाद की परिभाषा Section 2 (d) में दी गई है। किसी मामले में कार्यवाही के आशय से मजिस्ट्रेट से मौखिक या लिखित सूचना कि किसी ज्ञात या अज्ञात व्यक्ति ने अपराध किया है परिवाद कहलाता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि, "पुलिस रिपोर्ट से भिन्न मजिस्ट्रेट को किसी ज्ञात या अज्ञात व्यक्ति के द्वारा अपराध के बारे में इस आशय से दी गई सूचना कि वह उचित कार्यवाही करे परिवाद कहलाती है।"

जब असंज्ञेय अपराध के घटित होने की सूचना पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को दी जाती है तो वह धारा 155 के अन्तर्गत परिवाद के रूप में दर्ज की जाती है। SHO उस मामले में मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना अन्वेषण आरंभ नहीं कर सकता। उस परिवाद को भी मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाता है। मजिस्ट्रेट के आदेश धारा 156 (3) पर उस मामले का अन्वेषण किया जाता है। अन्वेषण होने के उपरांत यदि मामला बनता है तो पुलिस रिपोर्ट [Section 173 (2)] पेश की जाती है। ऐसे किसी मामले में जो अन्वेषण के पश्चात् किसी असंज्ञेय अपराध का किया जाना प्रकट करता है। पुलिस अधिकारी द्वारा दी गई रिपोर्ट परिवाद समझी जायेगी और पुलिस अधिकारी जिसके द्वारा ऐसी रिपोर्ट दी गई है परिवादी समझा जायेगा [Section 2 (d) स्पष्टीकरण]। असंज्ञेय अपराध की रिपोर्ट दर्ज करवाने आये किसी व्यक्ति को SHO द्वारा मजिस्ट्रेट के समक्ष अपना परिवाद प्रस्तुत करने का आदेश भी दिया जा सकता है। मजिस्ट्रेट स्वयं ही मामले की जांच कर सकता है। इन मामलों का संज्ञान [Section 190 (1) (a)] में लिया जाता है। मजिस्ट्रेट के समक्ष परिवाद धारा 200 के अन्तर्गत पेश किया जाता है। इस संबंध में कार्यवाही से संबंधित प्रावधान धारा 200 से 203 में दिये गये।

एच. एस. बैन्स बनाम राज्य 1980 SC - एक मजिस्ट्रेट को जब परिवाद प्राप्त होता है तो वह धारा 156 (3) के अन्तर्गत पुलिस को अन्वेषण करने का आदेश दे सकता है। पुलिस अन्वेषण करने के उपरांत अपनी रिपोर्ट धारा 173 (2) के अन्तर्गत प्रस्तुत करती है। पुलिस रिपोर्ट प्राप्त होने के उपरांत मजिस्ट्रेट निम्न तीन कार्यों में से एक कार्य कर सकता है :-

1. वह यह निर्णय कर सकता है कि अभियुक्त के विरुद्ध पर्याप्त आधार नहीं है। अतः आगे कार्यवाही नहीं की जायेगी।
2. वह धारा 190 (1) (b) के अन्तर्गत पुलिस रिपोर्ट पर अपराध का संज्ञान ले सकता है तथा वारण्ट या समन जारी कर सकता है।
3. वह मूल परिवाद के आधार पर धारा 190 (1) (a) में संज्ञान ले सकता है तथा धारा 200 के अन्तर्गत परिवादी एवं गवाहों का परीक्षण कर सकता है।

II. परिवाद की विशेषतायें [Section 2 (d)]:

प्रमुख विशेषतायें निम्न हैं :-

1. परिवाद मजिस्ट्रेट को लिखित या मौखिक किया जा सकता है।
2. इसमें सूचित किया जाता है कि किसी ज्ञात या अज्ञात व्यक्ति ने अपराध किया है।
3. यह इस आशय से किया जाता है कि मजिस्ट्रेट द्वारा उचित कार्यवाही की जाये।
4. परिवाद संज्ञेय या असंज्ञेय दोनों प्रकार के अपराधों के लिए किया जा सकता है।
5. जहां किसी संज्ञेय अपराध के लिए अन्वेषण किया जाता है लेकिन साक्ष्य से असंज्ञेय अपराध किया जाना प्रतीत होता है तो ऐसी स्थिति में पुलिस अधिकारी को परिवादी माना जाता है और Police Report को परिवाद माना जाता है। इस मामले में भी संज्ञान Section 190 (1) (b) के अन्तर्गत लिया जाता है तथा मामले का विचारण प्राईवेट परिवाद पर दायर मामले की तरह किया जाता है। इस संबंध में धारा 244-250 तथा धारा 251-259 आदि के प्रावधानों को लागू किया जा सकता है।
6. धारा 173 (2) के अन्तर्गत पेश किया गया चालान या पुलिस रिपोर्ट परिवाद के अन्तर्गत नहीं आती है।

III. परिवाद और FIR में अन्तर :

1. FIR संज्ञेय मामलों में होती है जबकि परिवाद संज्ञेय व असंज्ञेय दोनों प्रकार के मामलों में किया जा सकता है।
2. FIR में मामला अन्वेषण के बाद न्यायालय पहुंचता है जबकि परिवाद में मामला सीधे न्यायालय पहुंचता है।

3. FIR के बाद अन्वेषण होती है तथा परिवाद के बाद सामान्यतः मजिस्ट्रेट द्वारा जांच की जाती है तथा परिवाद में अन्वेषण भी करवायी जा सकती है।
4. परिवाद मजिस्ट्रेट को तथा FIR थाने के भारसाधक अधिकारी को दर्ज करवायी जाती है।
5. परिवाद पर पुलिस अधिकारी को मजिस्ट्रेट के आदेश [Section 156 (3)] के बाद ही अन्वेषण का अधिकार मिल जाता है।
6. FIR में पुलिस अधिकारी को किसी व्यक्ति को बिना वारण्ट के किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करने का अधिकार मिल जाता है क्योंकि वह संज्ञेय मामला है। जबकि परिवाद में पुलिस अधिकारी को मजिस्ट्रेट के आदेश के उपरांत भी किसी व्यक्ति को बिना वारंट गिरफ्तार करने का अधिकार नहीं मिलता।

IV. **परिवाद** किया जाना :

परिवाद धारा 190 सपठित धारा 200 के अन्तर्गत किया जाता है। मजिस्ट्रेट धारा 190 (1) (a) के अन्तर्गत परिवाद पर संज्ञान लेने के उपरांत धारा 200-203 के अन्तर्गत कार्यवाही प्रारंभ करता है। धारा 190 के अन्तर्गत मजिस्ट्रेट द्वारा संज्ञान निम्न आधारों पर लिया जा सकता है :-

1. पुलिस रिपोर्ट [Section 173 (2)] के अन्तर्गत संज्ञान [Section 190 (1) (b)]
2. परिवाद पर संज्ञान (Section 200) [Section 190 (1) (a)]
3. किसी सूचना पर संज्ञान [Section 190 (1) (c)]
4. स्वंय के ज्ञान पर संज्ञान [Section 190 (1) (c)]

V. **प्रक्रिया** :

परिवाद की स्थिति में निम्न प्रक्रिया को अपनाया जाता है :-

1. धारा 200 के अनुसार सूचना देने वाले व्यक्ति की मजिस्ट्रेट के द्वारा परीक्षा की जाती है। वह परीक्षा के सारांश को अभिलिखित किया जाता है। उसके बयानों पर मजिस्ट्रेट व परिवादी के हस्ताक्षर करवाये जाते हैं। यदि परिवादी अपने साथ साक्षी लेकर आया है तो उनकी परीक्षा की जायेगी एवं उनके सारांश पर मजिस्ट्रेट व साक्षियों के हस्ताक्षर होंगे। निम्न दो परिस्थितियों में परिवादी व साक्षी की परीक्षा नहीं की जाती :-
   (क) जब पदीय कर्तव्यों के निर्वहन में कार्य करते हुए परिवाद किसी लोक सेवक या न्यायालय द्वारा किया गया है।
   (ख) यदि मजिस्ट्रेट जांच या विचारण के लिए मामले की धारा 192 के अधीन किसी अन्य मजिस्ट्रेट के हवाले कर देता है।

   उक्त दोनों मामलों में परिवाद लिखित रूप से न्यायालय या लोकसेवक द्वारा प्रस्तुत किया जाना चाहिए। यदि CJM ने मामला धारा 192 के अन्तर्गत परिवादी और गवाहों के बयान दर्ज करने के उपरांत अन्तरित किया है तब भी मजिस्ट्रेट को उनकी परीक्षा करनी आवश्यक नहीं है।
2. धारा 201 के अनुसार यदि मजिस्ट्रेट उस मामले का संज्ञान करने में सक्षम नहीं है तो परिवादी को उचित न्यायालय में जाने के लिए कहेगा। वह उस परिवाद पर अपना पृष्ठांकन करके सक्षम न्यायालय में पेश करने के लिए कहेगा।
3. धारा 202 के अनुसार जब मजिस्ट्रेट सन्तुष्ट हो जाये कि परिवाद पर उसे कार्यवाही करने का अधिकार है तो वह पुलिस को अन्वेषण करने का अधिकार दे सकता है या स्वयं जांच कर सकता है।
4. धारा 203 में तथ्यों व साक्षियों के आधार पर मजिस्ट्रेट अन्वेषण जांच के बाद यह पाता है कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही का कोई आधार नहीं है तो परिवाद को खारिज कर देगा और उस पर खारिज करने के कारणों का उल्लेख करेगा।
5. यदि मामला बनता है तो धारा 204 के अन्तर्गत अभियुक्त के विरुद्ध समन या वारण्ट जारी किया जा सकता है। किन्तु समन या वारण्ट तब तक जारी नहीं किया जा सकता जब तक गवाहों की सूची पेश न कर दी गई हो।
6. धारा 205 मजिस्ट्रेट की अभियुक्त की व्यक्तिगत उपस्थिति की माफी करने का अधिकार देती है किन्तु वारण्ट जारी होने के उपरांत माफी नहीं दी जा सकती।

जब अभियुक्त मजिस्ट्रेट के सामने प्रस्तुत होता है या लाया जाता है तो वाद के तथ्यों और परिस्थितियों के अनुसार अध्याय 16 (धारा 204-210) में वर्णित प्रक्रिया को मजिस्ट्रेट के समक्ष पूर्ण किया जाता है। वह कार्यवाही पूर्ण होने के उपरांत आरोप विरचित करके उचित न्यायालय में विचारण आरंभ हो जाता है।

दण्ड न्यायालयों का गठन (धारा 6-25)

आपराधिक न्यायालयों एवं कार्यालियों का गठन (धारा 6) :

1. High Court
2. (a) Court of Session सेशन न्यायाधीश
   (b) Additional Session Judge अतिरिक्त सेशन न्यायाधीश
3. Assistance Session Judge सहायक सेशन न्यायाधीश
4. (a) CJM मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट = DM
   (b) Additional CJM = DM
5. JM 1st class/MM महानगरीय मजिस्ट्रेट
6. JM 2nd class
7. Special Judicial Magistrate विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट जैसे JM (C.B.I.)
8. Executive Magistrate कार्यपालक मजिस्ट्रेट

Executive Magistrate (Section 20);

1. The District Magistrate (DM) DM and DC (जिला मजिस्ट्रेट एवं जिला कलेक्टर)
2. The Additional DM (Ad M)
3. SDM (उपखण्ड मजिस्ट्रेट)
4. कार्यपालक मजिस्ट्रेट
5. विशेष कार्यपालक मजिस्ट्रेट (धारा 21)

प्रश्न - न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम वर्ग तथा महानगरीय मजिस्ट्रेट में क्या अन्तर है?

उत्तर - महानगरीय मजिस्ट्रेट 10 लाख से अधिक की जनसंख्या वाले महानगरों में नियुक्त (धारा 16) किये जाते हैं जबकि अन्य क्षेत्रों में न्यायिक मजिस्ट्रेट नियुक्त किये जाते हैं (धारा 11)। दोनों की शक्तियां समान हैं। वे 3 वर्ष तक के कारावास की सजा तथा 5000 रुपये तक का जुर्माना आरोपित कर सकते हैं। जब महानगरीय मजिस्ट्रेट के द्वारा 3 माह तक की सजा या 200 रुपये तक जुर्माना या दोनों आरोपित किये जाते हैं तब उसके विरुद्ध अपील नहीं की जा सकती। (धारा 376)

जब मजिस्ट्रेट प्रथम वर्ग द्वारा 100 रुपये तक का जुर्माना आरोपित किया गया हो तो उसके विरुद्ध भी अपील नहीं की जा सकती। (धारा 376)

इस प्रकार दोनों में अपील के अधिकार के संबंध में अन्तर है।

प्रश्न - लोक अभियोजक कौन होता है? क्या यह वाद वापस ले सकता है? उसके प्रकार बताओ।

उत्तर - राज्य की ओर से आपराधिक मामलों में पैरवी करने वाले अधिवक्ता को लोक अभियोजक कहा जाता है। सभी आपराधिक कार्यवाहियां जिनका संचालन राज्य की ओर से किया जाता है। उनका नेतृत्व उसके द्वारा किया जाता है। वह राज्य सरकार के निर्देश पर धारा 321 Cr.P.C. के अन्तर्गत अभियोजन को वापस ले सकता है। उसकी नियुक्ति Section 2 (u), 24 और 25 Cr.P.C. के अन्तर्गत राज्य सरकार द्वारा की जाती है। लोक अभियोजक के प्रमुख प्रकार निम्न हैं :-

1. केन्द्र सरकार द्वारा नियुक्त लोक अभियोजक - धारा 24 (1)
2. राज्य सरकार द्वारा नियुक्त लोक अभियोजक - धारा 24 (1)
3. सहायक लोक अभियोजक जिनकी नियुक्ति धारा 24 (2) के अन्तर्गत की जाती है।
4. अतिरिक्त लोक अभियोजक जिनकी नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा धारा 24 (2) के अन्तर्गत की जाती है।
5. केन्द्र सरकार द्वारा नियुक्त विशेष लोक अभियोजक - धारा 24 (6)
6. राज्य सरकार द्वारा नियुक्त विशेष लोक अभियोजक - धारा 24 (6)
7. सहायक लोक अभियोजक (धारा 24)
8. धारा 2 (u) के अन्तर्गत लोक अभियोजक के निदेशन में कार्य करने वाला कोई अन्य व्यक्ति।

न्यायालयों की शक्तियां (धारा 26-35)

I. न्यायालयों की शक्तियां (धारा 28-29) :

1. High Court - विधि द्वारा प्राधिकृत कोई सजा [Section 28 (1)]
2. Session Judge/Ad. Session Judge [Section 28 (2)] - विधि द्वारा प्राधिकृत कोई सजा किन्तु मृत्यु की दण्ड से पुष्टि आवश्यक। [Section 366]
3. Assistant Session Judge [Section 28 (3)] - 10 वर्ष तक की सजा
4. CJM/Ad. CJM [Section 29 (1)] - 7 वर्ष तक की सजा
5. JM 1st/MM [Section 29 (2)] - 3 वर्ष तक की सजा या 5000 रुपये तक का जुर्माना या दोनों
6. JM 2nd [Section 29 (3)] - 1 वर्ष तक की सजा या 1000 रुपये तक का जुर्माना या दोनों

न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम अनुसूची उल्लेखित विधि के अनुसार अपराधों का विचारण कर सकता है परन्तु धारा 29 में उल्लेखित सजा से अधिक सजा आरोपित नहीं कर सकता। यदि उसका मत हो कि अभियुक्त को अधिक सजा देनी चाहिए तो वह धारा 325 के अन्तर्गत कारण अभिलिखित करके मामला CJM के पास भेज सकता है।

II. जुर्माने के व्यतिक्रय में सजा :

यदि जुर्माना अदा न किया जाये तो अभियुक्त को उसके लिये अतिरिक्त सजा को भुगतना पड़ता है। धारा 30 में जुर्माने के व्यतिक्रय की दशा में सजा का प्रावधान करते हुए मजिस्ट्रेट की शक्ति पर कुछ सीमाएं आरोपित की गई हैं। वे इस प्रकार हैं :-

1. धारा 29 में वर्णित शक्ति का उल्लंघन नहीं किया जाना चाहिए अर्थात् JM 1st Rs. 5000 से अधिक जुर्माना आरोपित नहीं कर सकता। (धारा 30)
2. किसी अपराध की अधिकतम सजा जो मजिस्ट्रेट दे सकता है से 1/4 से अधिक नहीं होनी चाहिए। (धारा 30)

   यह ज्ञातव्य है कि न्यायिक मजिस्ट्रेट मूल अपराध के लिए जितनी सजा दे सकते हैं उसके अतिरिक्त वे जुर्माना अदा करने की अवस्था में सजा दे सकते हैं।
3. यदि अपराध सजा और जुर्माने दोनों से दण्डनीय हो तो अपराध के लिए निर्धारित अधिकतम सजा की 1/4 तक की सजा व्यतिक्रय की दशा में आरोपित की जा सकती है। इस प्रकार की सजा साधारण या कठोर दोनों प्रकार की हो सकती है। [Section 65 IPC]
4. मात्र जुर्माने से दण्डनीय अपराधों में जुर्माना अदा न करने की अवस्था में निम्न प्रकार से सजा दी जा सकती है। [Section 67 IPC]

   Rs. 1 – 50 ——— 2 माह
   Rs. 51 – 100 ——— 4 माह
   Rs. 101 and above ——— 6 माह

इस स्थिति में सजा मात्र साधारण कारावास होगी। उक्त वर्णन से स्पष्ट है कि मजिस्ट्रेट की क्षमता से 1/4 भाग तक के कारावास की सजा दी जा सकती है। इस प्रकार JM 1st class तीन वर्ष तक की सजा दे सकता है तथा जुर्माना अदा न करने की अवस्था में वह 3 वर्ष x 12 माह = 36 माह = 36/4 = 9 माह तक की सजा दे सकता है।

III. क्रमवर्ती तथा समवर्ती सजा [Consecutive and Concurrent Sentences, Section 30 Cr.P.C.]:

आपराधिक विधि का सामान्य सिद्धान्त यह है कि जब किसी अभियुक्त को दो या दो से अधिक अपराधों की सजा एक साथ दी जाती है तो सभी सजायें क्रमवर्ती रूप से चलती हैं अर्थात् यदि एक अपराध में उसे 4 वर्ष की सजा तथा दूसरे अपराध में उसे एक वर्ष की सजा दी गयी है तो उसकी कुल सजा 5 वर्ष की हुयी। न्यायाधीश निर्णय देते समय यह निर्देश दे सकता है कि दोनों अपराधों की सजायें समवर्ती रूप से चलेंगी। इस प्रकार यदि अभियुक्त को एक अपराध में चार वर्ष की सजा तथा दूसरे अपराध में 1 वर्ष दी गयी है तो उसकी कुल सजा 4 वर्ष ही होगी। यदि निर्णय में इस बात का उल्लेख नहीं किया गया है कि दोनों अपराधों की सजायें क्रमवर्ती या समवर्ती रूप से चलेगी तो यह माना जायेगा कि दोनों सजायें क्रमवर्ती रूप से चलेंगी। यदि कोई अपराध कारावास और जुर्माने दोनों से दण्डनीय है तो जुर्माना अदा न करने पर अभियुक्त को अतिरिक्त सजा भुगतनी पड़ती है। जुर्माना अदा न करने पर प्रदान की गई सजा मूल सजा के समय समवर्ती रूप से नहीं चल सकती अर्थात् यह सजा मात्र क्रमवर्ती रूप से चल सकती है।

धारा 31 के नियम :

जब किसी एक विचारण में अभियुक्त को दो या दो से अधिक अपराधों के लिए दण्डित किया जाता है तो उसे प्रदान की गई सजा के संबंध में निम्न नियम लागू होते हैं :-

1. सभी अपराधों में प्रदान की गई सजा कुल मिलाकर 14 वर्ष से अधिक नहीं होनी चाहिए।
2. दो या दो से अधिक अपराधों में मजिस्ट्रेट अपनी क्षमता से दुगुनी सजा से अधिक सजा किसी व्यक्ति को नहीं दे सकता। इस प्रकार न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वितीय वर्ग किसी अभियुक्त को दो वर्ष से अधिक सजा नहीं दे सकता तथा न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम वर्ग 6 वर्ष से अधिक सजा किसी व्यक्ति को नहीं दे सकता है।

यदि किसी अधिनियम में न्यूनतम सजा का उल्लेख कर दिया गया है तो उससे कम सजा न्यायाधीश द्वारा नहीं दी जा सकती।

कार्यवाही शुरु करने की अपेक्षित शर्तें (धारा 190-199)

I. परिचय :

एक न्यायालय किसी अपराध का संज्ञान तभी ले सकता है जब संज्ञान लेने की आवश्यक शर्तें पूर्ण हो जायें। धारा 190-199 तक में उन शर्तों और सीमाओं का वर्णन किया गया है जिनको पूर्ण करने पर ही संज्ञान लिया जा सकता है। किसी अपराध का संज्ञान लेने का अभिप्राय है मजिस्ट्रेट द्वारा अपराध के तथ्यों पर अपने मस्तिष्क का प्रयोग करते हुए यह विचार करना कि कोई संज्ञेय या असंज्ञेय अपराध हुआ है। इसके लिए अभियुक्त की उपस्थिति आवश्यक नहीं है क्योंकि संज्ञान लेने के लिए कोई बाह्य कार्यवाही आवश्यक नहीं है।

सामान्य नियम यह है कि आपराधिक विधि को कोई भी व्यक्ति गतिशीलता प्रदान कर सकता है यदि किसी व्यक्ति को अपराध किये जाने की जानकारी प्राप्त होती है तो वह परिवाद या FIR के माध्यम से आपराधिक विधि को गतिशीलता प्रदान कर सकता है परन्तु इस सामान्य नियम के कुछ अपवाद हैं जिनका वर्णन धारा 195 से 198 A में किया गया है।

II. मजिस्ट्रेट द्वारा अपराध का संज्ञान (धारा 190) :

धारा 190 (1) के अनुसार अध्याय 14 (190-199) में वर्णित शर्तों को पूर्ण करने के उपरांत न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम वर्ग या न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वितीय वर्ग [जिसे CJM ने ऐसा करने के लिए प्राधिकृत किया हो - 190 (2)]। निम्न आधारों पर किसी अपराध का संज्ञान ले सकता है :-

1. किसी मामले का धारा 200 के अन्तर्गत परिवाद प्राप्त होने पर। [Section 190 (1) (a)]
2. किसी मामले के संबंध में पुलिस द्वारा धारा 173 (2) के अन्तर्गत चालान पेश किये जाने पर। [Section 190 (1) (b)]
3. पुलिस अधिकारी से भिन्न किसी अन्य व्यक्ति द्वारा सूचित किये जाने पर। [Section 190 (1) (c)]
4. अपने स्वयं के ज्ञान पर किसी अपराध का संज्ञान लेना। [Section 190 (1) (d)]

सम्पत सिंह बनाम हरियाणा राज्य 1993 SC - यदि किसी अपराध का किया जाना तथ्यों से प्रकट होता है तो मजिस्ट्रेट अपराध का संज्ञान लेने के लिए बाध्य है। यह उसके विवेक पर निर्भर नहीं करता। अतः धारा 190 में may take cognizance के स्थान पर must take cognizance या shall take cognizance शब्द का प्रयोग किया जाना चाहिए।

आर. आर. चारी बनाम उ.प्र. राज्य AIR 1951 SC - अपराध का संज्ञान लेने का अभिप्राय है किसी अपराध के तथ्यों के प्रति जागरुक हो जाना। Cr.P.C. में संज्ञान शब्द का प्रयोग आपराधिक प्रक्रिया की उस अवस्था के लिए किया गया है जिसमें मजिस्ट्रेट किसी अपराध की न्यायिक सूचना (Judicial Notice) प्राप्त करता है। यह जाँच Section 2 (g) जांच प्रारंभ करने की प्रथम अवस्था है।

तुलाराम बनाम किशोर सिंह (1977) SC - यदि परिवाद प्राप्त होने पर मजिस्ट्रेट धारा 156 (3) के अन्तर्गत अन्वेषण करने का आदेश देता है तो यह नहीं कहा जा सकता कि उसने अपराध का संज्ञान ले लिया है। किसी मामले में अपराध का संज्ञान लिया है या नहीं प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करता है तथा यह एक तथ्य का प्रश्न है।

हस्तीमाल बनाम राजस्थान राज्य (1994) Raj H.C. - धारा 190 के अन्तर्गत जब मजिस्ट्रेट किसी अपराध का संज्ञान लेने से मना करता है तो उसे कारण अभिलिखित करते हुए आदेश पारित करना चाहिए।

III. संज्ञान लेने के उपरान्त मामले का अन्तरण (धारा 191-192) :

धारा 191 के अनुसार जब मजिस्ट्रेट ने धारा 190 (1) (c) के अन्तर्गत स्वयं संज्ञान लिया हो अर्थात् जब मजिस्ट्रेट ने स्वयं के ज्ञान या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा सूचित किये जाने पर संज्ञान लिया हो तो अभियुक्त को यह अधिकार है कि यदि वह चाहे तो मामले का विचारण किसी अन्य मजिस्ट्रेट से करवा सकता है। इस स्थिति में मामला CJM के निर्देश के अनुसार किसी अन्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को अन्तरित किया जाता है। मजिस्ट्रेट का यह दायित्व बनता है कि वह अभियुक्त को उसके इस अधिकार से अवगत करवायें। धारा 191 प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्त पर आधारित है क्योंकि मजिस्ट्रेट ने अपने स्वयं के ज्ञान के आधार पर संज्ञान लिया है। अतः वह अभियुक्त के लिए प्रतिकूल हो सकता है। इस स्थिति में इस बात का भय बना रहता है कि मजिस्ट्रेट अभियोजन पक्ष के प्रति पक्षपात कर सकता है। धारा 192 के अन्तर्गत CJM भी अपराध का संज्ञान लेने के उपरांत किसी सक्षम मजिस्ट्रेट को अपराध का विचारण करने के लिए मामले का अन्तरण कर सकता है। यह शक्ति न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम वर्ग को भी प्रदान की गई है। यह वह अपराध का विचारण करने में सक्षम न हो तो संज्ञान लेने के उपरांत मामले का अन्तरण किसी अन्य मजिस्ट्रेट को कर सकता है।

VI. संज्ञान लेने की शक्ति पर सीमायें (धारा 195-199) :

प्रश्न - विधि के इस साधारण नियम की दाण्डिक विधि की प्रक्रिया को कोई भी चालू कर सकता है के क्या अपवाद हैं? अपने उत्तर में उदाहरण देकर समझाइये। ***(RJS 1989)***

उत्तर - दाण्डिक विधि का सामान्य नियम यह है कि कोई भी व्यक्ति परिवाद या FIR द्वारा आपराधिक विधि की प्रक्रिया को गतिशील कर सकता है चाहे उसका कोई व्यक्तिगत हित प्रभावित हुआ हो या नहीं। यह सामान्य नियम इस बात पर आधारित है कि अपराध किसी व्यक्ति विशेष के विरुद्ध नहीं वरन् संपूर्ण समाज के विरुद्ध किया जाता है। अतः समाज का कोई भी व्यक्ति आपराधिक विधि को गतिशीलता प्रदान कर सकता है। इस सामान्य नियम के अपवाद धारा 195-199 में दिये गये हैं। इनके अन्तर्गत वर्णित अपराधों का संज्ञान मात्र तभी लिया जा सकता है जब परिवाद पीड़ित व्यक्ति के द्वारा किया गया हो। इनमें से कुछ अपराध ऐसे हैं जो किसी व्यक्ति विशेष को ही प्रभावित करते हैं संपूर्ण समाज को नहीं। अतः मात्र हितबद्ध व्यक्ति द्वारा ही परिवाद दायर किया जा सकता है। कुछ अन्य अपराधों को इसमें लोकनीति के आधार पर सम्मिलित किया गया है। उदाहरणों सहित इन प्रावधानों का वर्णन इस प्रकार है :-

1. लोकसेवक के विधिपूर्ण प्राधिकार की अवमानना से संबंधित अपराधों (Section 172 – 188 IPC) का संज्ञान मात्र लोकसेवक द्वारा परिवाद प्रस्तुत किये जाने पर ही लिया जा सकता है। इनमें समन की उपेक्षा करना, झूठी जानकारी देना, निर्देश दिये जाने पर भी वस्तु को न्यायालय में प्रस्तुत न करना आदि अपराध सम्मिलित हैं। [Section 195 (1) (a) Cr.P.C.]
2. जब धारा 193-196, 205-211 IPC (झूठा साक्ष्य देना) के अन्तर्गत वर्णित अपराधों को न्यायालय के समक्ष विचारण के दौरान कारित किया जाये तो उनका संज्ञान तभी लिया जा सकता है जब न्यायाधीश (जिसके समक्ष इन अपराधों को किया गया है) के द्वारा इनके संबंध में लिखित परिवाद प्रस्तुत किया जाये [Section 195 (1) (b) (i) and 195 (1) (b) (ii)]। Section 195 (1) (b) (ii) में साक्ष्य में प्रस्तुत किये गये दस्तावेज के विषय में यही प्रावधान किया गया है।
3. राज्य के विरुद्ध अपराध [Chapter VI, Section 121 – 130 IPC] जैसे भारत सरकार के विरुद्ध युद्ध छेड़ना, राजद्रोह आदि या Section 153 A IPC (विभिन्न संप्रदायों के मध्य शत्रुता व विद्वेष आदि बढ़ाना) या Section 295 A IPC (किसी वर्ग के धर्म का अपमान करना) या Section 505 (1) IPC लोक रिष्टि कारक वक्तव्य आदि अपराधों का संज्ञान तभी लिया जा सकता है जब केन्द्र या राज्य सरकार की पूर्ण अनुमति ले ली गई हो। [Section 196 Cr.P.C.]
4. धारा 197 Cr.P.C. के अनुसार लोकसेवक या न्यायाधीश द्वारा अपने पदीय दायित्व के निर्वहन में किये गये किसी अपराध का संज्ञान तभी लिया जा सकता है जब राज्य सरकार या केन्द्र सरकार की पूर्ण अनुमति ले ली गई हो।
5. विवाह के विरुद्ध अपराधों (Sections 493 – 498 IPC) तथा Section 498 A IPC (पत्नी के विरुद्ध क्रूरता) से संबंधित अपराधों का संज्ञान तभी लिया जा सकता है जब पीड़ित व्यक्ति या उसके संरक्षक द्वारा परिवाद प्रस्तुत किया गया हो। [Section 198 and 198 A Cr.P.C.]
6. मानहानि (Sections 499 – 502 IPC) के अपराध का संज्ञान तभी लिया जा सकता है जब पीड़ित व्यक्ति द्वारा परिवाद प्रस्तुत किया गया हो परन्तु राष्ट्रपति, राज्यपाल तथा मंत्रियों के विरुद्ध यह अपराध किये जाने पर लोक अभियोजक द्वारा परिवाद 6 माह में प्रस्तुत किया जा सकता है। [Section 199 Cr.P.C.)

उक्त वर्णित अपराधों का संज्ञान तभी लिया जा सकता है जब पीड़ित या सम्बद्ध व्यक्ति द्वारा परिवाद प्रस्तुत किया गया हो। इसके अतिरिक्त अपराधों का संज्ञान किसी भी व्यक्ति की सूचना या परिवाद के आधार पर लिया जा सकता है।

Bail and Bond [Sections 436 – 450]

I. परिचय :

दण्ड प्रक्रिया संहिता में अपराधों को दो वर्गों में बांटा गया है - (1) जमानतीय अपराध (2) अजमानतीय अपराध।

जमानतीय अपराध का अर्थ ऐसे अपराध से है जिसे Cr.P.C. की पहली अनुसूची में जमानतीय घोषित किया गया है या किसी अन्य विधि में जमानतीय घोषित किया गया है और अजमानतीय अपराध का अर्थ किसी अन्य अपराध से है। धारा 2 (a) का उपबन्ध एक निर्देश है। इसके द्वारा जमानत की संकल्पना को स्पष्ट नहीं किया गया है।

गिरफ्तार किये गये व्यक्ति को प्रतिभूति सहित या रहित बन्धपत्र पर छोड़ दिया जाना जमानत है।

जमानतीय अपराध वे होते हैं जिनमें गिरफ्तार किये गये व्यक्ति को जमानत पर छूटने का अधिकार होता है। अजमानतीय अपराध वे होते हैं जिनमें गिरफ्तार किये गये व्यक्ति को जमानत पर छूटने का अधिकार होता नहीं होता लेकिन न्यायालय अपनी विवेक शक्ति के प्रयोग में उसे जमानत पर छोड़ सकता है। अतः अजमानतीय अपराधों में गिरफ्तार व्यक्ति जमानत पर छूटने के अधिकार की मांग नहीं कर सकता।

II. जमानतीय अपराधों के विषय में नियम (धारा 436) :

1. जमानतीय अपराधों में गिरफ्तार व्यक्ति को जमानत पर छूटने का अधिकार होता है।
2. उसे पुलिस अधिकारी द्वारा जमानत पर छोड़ा जा सकता है।
3. यदि ऐसे व्यक्ति को न्यायालय के सामने पेश किया जाता है तो मजिस्ट्रेट उसको बतायेगा। यदि वह जमानत की व्यवस्था कर दे तो उसे जमानत पर छोड़ सकता है।
4. जमानत का अर्थ है बन्धपत्र का निष्पादन करना (मुचलका, Bond) और प्रतिभूओं की व्यवस्था करना प्रतिभूओं की मांग करना विवेकाधीन शक्ति है।
5. ऐसे बन्धपत्र की मूल शर्त यह होती है कि न्यायालय जब भी उसे निर्देश, समन करेगा या बुलायेगा तो वह न्यायालय में उपस्थित होगा और न्याय के हित में न्यायालय द्वारा अन्य शर्तें भी विहित की जा सकती हैं।
6. प्रतिभूति की रकम मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों के अनुसार उचित होनी चाहिए। अपीलीय न्यायालय प्रतिभूओं की रकम एवं संख्या में कमी करने की शक्ति रखता है। अपीलीय न्यायालय मजिस्ट्रेट को यह निर्देश भी दे सकता है कि उसे संघपत्र के निष्पादन पर छोड़ा जाये।

जब किसी व्यक्ति को धारा 436 के अन्तर्गत छोड़ा जाता है तो उसका कानूनी कर्तव्य है कि जब भी न्यायालय उसको समन करे वह न्यायालय में उपस्थित हो। यदि वह बन्धपत्र की शर्तों का उल्लंघन करता है या न्यायालय के सामने उपस्थित नहीं होता तो ऐसी दशा में उसे पुनः गिरफ्तार किया जा सकता है। मजिस्ट्रेट के द्वारा उसके लिए वारण्ट जारी किया जा सकता है और उसकी उपस्थिति को आबद्धकारी बनाने के लिए अन्य कार्य भी किये जा सकते हैं। जब ऐसे व्यक्ति को पुनः गिरफ्तार कर लिया जाता है तो भले की अपराध अजमानतीय प्रकृति का हो लेकिन जमानत का अधिकार उसे उपलब्ध नहीं होगा। न्यायालय उसे जमानत पर छोड़ भी सकता है और मना भी कर सकता है।

III. अजमानतीय अपराधों में जमानत (धारा 437) :

1. अजमानतीय अपराधों में गिरफ्तार व्यक्ति को जमानत पर छूटने का अधिकार नहीं होता है।
2. न्यायालय के द्वारा उसे अपनी विवेक शक्ति के आधार पर जमानत पर छोड़ा जा सकता है।
3. निम्न परिस्थितियों में कानून न्यायालय को निर्देश देता है कि अजमानतीय अपराध होने पर भी अभियुक्त को जमानत पर छोड़ा जायेगा।

(क) जब अन्वेषण धारा 167 में विहित अवधि में पूरा न हो तो उसे जमानत पर छोड़ा जा सकता है। मृत्युदण्ड, आजीवन कारावास एवं 10 वर्ष के कारावास से दण्डनीय।

अपराध = 90 दिन (PC 15 दिन + JC 75 दिन) JC – Judicial custody, PC – Police custody

10 वर्ष से कम कारावास = 60 दिन (15 दिन PC + 45 दिन JC)

(ख) जब वारण्ट मामले का विचारण 60 दिन की अवधि में पूर्ण न हो तो जमानत पर छोड़ा जा सकता है।

(ग) जब विचारण अजमानतीय अपराध के लिए किया जा रहा हो और विचारण के दौरान जो सबूत आते हैं वह जमानतीय अपराध के हों तो उसे जमानत पर छोड़ा जा सकता है।

(घ) जब अभियुक्त का विचारण अजमानतीय अपराध के लिए किया जाता है और विचारण के बाद अपराध जमानतीय साबित होता है तो न्यायालय के द्वारा निर्णय से पूर्व जमानत पर छोड़ दिया जायेगा।

4. धारा 437 के अधीन अजमानतीय अपराधों में जमानत के संबंध में कुछ नियम इस प्रकार हैं :-

जब किसी व्यक्ति को बिना वारण्ट के अजमानतीय अपराध के लिए पुलिस द्वारा गिरफ्तार किया जाता है और मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया जाता है तो मजिस्ट्रेट द्वारा उसे जमानत पर छोड़ा जाता है।

धारा 437 मजिस्ट्रेट को निर्देश देती है कि यदि ऐसा प्रतीत होता है कि व्यक्ति ने मृत्युदण्ड या आजीवन कारावास से दण्डनीय अपराध किया है तो उसे जमानत पर नहीं छोड़ा जायेगा।

यदि किसी व्यक्ति को संज्ञेय अपराध के लिए गिरफ्तार किया गया है और पहले उसे मृत्युदण्ड या आजीवन कारावास के लिए दोषसिद्ध किया गया है तो उसे जमानत पर नहीं छोड़ा जायेगा।

यदि उसे पहले दो या अधिक बार संज्ञेय या अजमानतीय अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया है तो मजिस्ट्रेट उसे जमानत पर नहीं छोड़ेगा।

लेकिन निम्न परिस्थितियों में उपरोक्त के बावजूद भी उसे जमानत पर छोड़ा जा सकता है।

(क) जब गिरफ्तार किया गया व्यक्ति 16 वर्ष से कम आयु का हो या स्त्री हो या रोगी हो।

(ख) जब वह व्यक्ति शारीरिक अयोग्यता से ग्रसित हो तो उपर्युक्त गम्भीर अपराधों के होने के बावजूद भी उसे जमानत पर छोड़ा जा सकता है।

5. अन्य मामलों में भी मजिस्ट्रेट के द्वारा अपराधी को न्याय के हित में जमानत पर छोड़ा जा सकता है। ऐसा करते समय न्यायालय के द्वारा उन कारणों को अभिलिखित किया जायेगा जिनके आधार पर उसे जमानत दी गई है।

जब किसी व्यक्ति को धारा 437 के अन्तर्गत जमानत पर छोड़ा जाता है तो उसे बन्धपत्र का निष्पादन करना होता है और न्यायालय प्रतिभूओं की मांग भी कर सकता है। ऐसे बन्धपत्र की मूल शर्त यह होती है कि न्यायालय जब भी उसे सूचना देगा वह हाजिर होगा और इसके अतिरिक्त गम्भीर अपराधों में या शान्ति या लोक व्यवस्था के विरुद्ध अपराधों बन्धपत्र में अन्य शर्तें भी विहित की जा सकती है जैसे कि वह अपराध की पुनरावृत्ति नहीं करेगा, वह अन्वेषण की प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न नहीं करेगा, सबूतों को नष्ट नहीं करेगा और न्यायालय की अनुमति के बिना न्यायालय के क्षेत्राधिकार से बाहर नहीं जायेगा। न्यायालय अन्य शर्तें भी आरोपित कर सकता है।

6. यदि मजिस्ट्रेट के द्वारा जमानत के लिए आवेदन को खारिज कर दिया जाता है तो सत्र न्यायालय में अपील की जा सकती है। यदि सत्र न्यायालय ने आवेदन को खारिज कर दिया है तो HC में अपील की जा सकती है (धारा 439)। यदि HC के द्वारा भी जमानत की अनुमति नहीं प्रदान की जाती तो अनुच्छेद 136 के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है।

मोती राय बनाम मध्य प्रदेश राज्य **AIR 1964 SC** - सर्वोच्च न्यायालय ने यह कहा कि अजमानतीय अपराधों में भी गिरफ्तार व्यक्ति को जमानत पर छोड़ा जाना एक नियम है और न छोड़ा जाना एक अपवाद है।

निष्कर्ष यह निकलता है कि चाहे अपराध की प्रकृति कैसी हो जब तक कि उसे न्याय के हित में अभिरक्षा में रखा जाना आवश्यक न हो तब तक अभियुक्त को जमानत पर छोड़ दिया जाना चाहिए। न्यायमूर्ति कृष्णा अय्यर ने *सुनील बत्रा केस* में कहा था कि न्यायालय का उद्देश्य अपराधी को समाप्त करना नहीं है बल्कि अपराध को समाप्त करना है। अतः सुधरने का अवसर प्रत्येक व्यक्ति को दिया जाना चाहिए।

IV. अग्रिम जमानत [Anticipatory Bail (Section 438)]:

अग्रिम जमानत का आवेदन सत्र न्यायालय या उच्च न्यायालय के सामने किया जा सकता है। इस विषय पर दोनों न्यायालयों की अधिकारिता समान है। किसी व्यक्ति द्वारा गलत आधारों पर अपनी गिरफ्तारी की आशंका होने पर आवेदन किया जा सकता है। ऐसे आवेदन में निम्न बातों को स्पष्ट किया जायेगा :-

1. यह कि प्रार्थी एक जिम्मेदार व्यक्ति है और उसकी अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा है और गलत सूचना के आधार पर उसे गिरफ्तार किये जाने की आशंका है।
2. उसने ऐसा कोई अपराध नहीं किया है जिससे प्रथम दृष्टया मामला बनता हो।

अगर न्यायालय उक्त दोनों बातों से सन्तुष्ट हो तो वह आदेश देगा कि उसे गिरफ्तारी के समय जमानत पर छोड़ दिया जाये। प्रार्थी से बन्धपत्र निष्पादित करवाया जा सकता है। बन्धनपत्र की निम्न शर्तें हो सकती हैं :-

1. पुलिस के साथ परीक्षा के लिए आवश्यकता होने पर वह उपस्थित होगा।
2. वह न्यायालय के क्षेत्राधिकार का भारत के बाहर न्यायालय की अनुमति के बिना नहीं जायेगा।
3. पुलिस के द्वारा अन्वेषण के कार्यों में कोई विघ्न पैदा नहीं करेगा।
4. किसी साक्ष्य को नष्ट नहीं करेगा तथा गवाहों को डरायेगा धमकायेगा नहीं।
5. न्यायालय धारा 437 (1) या (2) के अन्तर्गत कोई अन्य युक्तियुक्त शर्तें भी अरोपित कर सकता है।

अग्रिम जमानत के संबंध में मूल सिद्धान्त यह है कि गम्भीर अपराधों तथा सामाजिक आर्थिक विधायनों के मामलों में अग्रिम जमानत नहीं दी जानी चाहिए।

अग्रिम जमानत से संबंधित प्रावधान उ.प्र. तथा उत्तरांचल में लागू नहीं होते।

V. जमानत रद्द होना **[Section 437 (5) and Section 439 (2)]:**

धारा 437 (5) तथा धारा 439 (2) के अन्तर्गत जमानत को रद्द किया जा सकता है। धारा 437 (5) के अनुसार जिस न्यायालय ने अभियुक्त को जमानत पर रिहा किया है। यदि वह आवश्यक समझे तो अभियुक्त को पुनः गिरफ्तार करने का निदेश दे सकता है। जमानत रद्द करने का अधिकार न्यायालय को दिया गया है पुलिस अधिकारी को नहीं। जिस न्यायालय को जमानत दी गया थी वही न्यायालय रद्द कर सकता है अन्य नहीं। जिस न्यायालय द्वारा अभियुक्त का विचारण किया जा रहा हो वह भी जमानत रद्द कर सकता है।

कल्याण सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य 1989 MP - जब किसी अभियुक्त को अजमानतीय अपराध में गिरफ्तार कर लिया गया हो तथा उसे जमानत पर रिहा कर दिया गया हो तो उसकी जमानत को तभी रद्द किया जा सकता है जब अन्वेषण में अधिक गम्भीर प्रकृति के अपराध के तथ्य सामने आये हों।

महाराष्ट्र राज्य बनाम ए. सी. दिघे 1991 SC - यदि न्यायिक विवेक का दुरुपयोग करते हुए किसी व्यक्ति को जमानत प्रदान की गई हो तो उसे परिस्थितियों में परिवर्तन न होने पर भी रद्द किया जा सकता है।

जमानतीय अपराधों में जमानत रद्द करने का मजिस्ट्रेट को अधिकार नहीं है। इन मामलों में जमानत रद्द करने का अधिकार धारा 439 (2) के अन्तर्गत सत्र न्यायालय और उच्च न्यायालय को प्रदान किया गया है। इन न्यायालयों को जमानत रद्द करने की विस्तृत शक्तियां प्रदान की गई हैं। इनके द्वारा जमानतीय और अजमानतीय दोनों प्रकार के अपराधों में जमानत को रद्द किया जा सकता है। जमानत को एकपक्षीय आदेश द्वारा रद्द नहीं किया जाना चाहिए। अभियुक्त को सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए क्योंकि धारा 437 (5) तथा 439 (2) के अन्तर्गत विस्तृत शक्तियां उच्च न्यायालय को प्रदान की गयी हैं। अतः धारा 482 के अन्तर्गत वर्णित अन्तर्निहित शक्तियों का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए।

जमानत को निम्न आधारों पर रद्द किया जा सकता है :-

1. जब अभियुक्त के द्वारा वही अपराध पुनः कारित किया जाता है जिसके लिए उसे जमानत दी गयी थी।
2. यदि वह अन्वेषण में बाधा उत्पन्न करता है तथा अपने नियन्त्रण के स्थानों की तलाशी लेने से बलपूर्वक रोकता है।
3. यदि वह गवाहों को डराता धमकाता है।
4. यदि वह फरार हो जाता है।
5. यदि वह पुलिस या गवाहों के प्रति प्रतिशोध की भावना से कार्य करता है।

मजिस्ट्रेट के समक्ष कार्यवाही (धारा 204-210)

I. परिचय :

धारा 206 में अभियुक्त को यह अधिकार दिया गया है कि वह न्यायालय में उपस्थित हुये बिना ही अपना अपराध स्वीकार करके जुर्माने की अधिकतम राशि 100 रुपये जमा करवा सकता है। इसके लिए न्यायालय के द्वारा विशेष समन जारी किया जा सकता है। यह विशेष समन छोटे अपराधों (petty offences) के सम्बन्ध में जारी किया जाता है।

II. छोटे अपराध (Petty Offences) [Section 206 (2)]:

वे अपराध जो एक हजार रुपये तक के जुर्माने से दण्डनीय हों तथा जिनको राज्य सरकार के द्वारा छोटा अपराध घोषित किया गया हो छोटे अपराध कहते हैं। मोटरयान अधिनियम 1939/1988 के अन्तर्गत अपराधों को छोटा अपराध नहीं माना जाता है चाहे उसमें जुर्माना 1000 रुपये तक की क्यों न हो तथा इनके लिए धारा 206 के अन्तर्गत विशेष समन जारी नहीं किया जा सकता।

III. विशेष समन का जारी किया जाना (धारा 206):

जब अपराध छोटा हो और 100 रुपये तक जुर्माना करने पर न्याय का उद्देश्य पूरा हो जाये तो विशेष समन जारी किया जा सकता है।

IV. विशेष समन की अन्तर्वस्तु :

समन में लिखा जाता है कि यदि अभियुक्त अपना अपराध स्वीकार करता है तो 100 रुपये जुर्माना भेज दे और यदि वह अपना अपराध स्वीकार नहीं करता तो न्यायालय में उपस्थित होकर अपना बचाव करे।

Rimjhim

आरोप (Charge) (Sections 211 – 224)

I. व्यवहारिक ज्ञान :

आपराधिक मामलों में आरोप का महत्वपूर्ण स्थान है। वस्तुतः आरोप विरचित किये जाने के पश्चात् ही मामले का सारभूत विचारण प्रारंभ होता है। आरोप विरचित किये जाने का मुख्य उद्देश्य अभियुक्त को इस बात की जानकारी उपलब्ध कराना है कि उसके विरुद्ध किस अपराध को कारित किये जाने का आरोप है और उसे अपने विरुद्ध आरोप में क्या प्रतिरक्षा होनी है। एक आरोप में आवश्यकतानुसार निम्न बातों का उल्लेख किया जाना चाहिए :-

1. अपराध किसके द्वारा कारित किया गया है?
2. क्या अपराध कारित किया गया है?
3. किसके विरुद्ध अपराध कारित किया गया है?
4. अपराध किस स्थान पर कारित किया गया है?
5. अपराध कब (तिथि व समय)
6. अपराध किस विधि की किस धारा के अन्तर्गत आता है?
7. अपराध में किन वस्तुओं, उपकरणों या अस्त्र शस्त्रों का प्रयोग किया गया है?
8. अपराध का क्या परिणाम रहा है?
9. यदि आवश्यक हो तो अपराध कारित करने का तरीका भी बताया जाना चाहिए।

प्रारूप

(1) एक शीर्ष का आरोप :

न्यायालय जिला एवं सत्र न्यायाधीश, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश

प्रकरण संख्या 102/2005

FIR No. 1156/2004 P.S. मालवीय नगर

उत्तर प्रदेश राज्य अभियोजक

बनाम

अनिल कुमार S/o श्री मुकेश कुमार जाति आयु अभियुक्त
निवास 156 आदर्श नगर, इलाहाबाद, उ.प्र.

आरोप

1. मैं, जिला एवं सत्र न्यायाधीश – आशुतोष प्रताप सिंह, आप अनिल कुमार S/o श्री मुकेश पर निम्न आरोप लगाता हूं।
2. आपने 25 जुलाई 2004 को लगभग प्रातः 9 बजे ख को रेलवे स्टेशन के पास आत्महत्या करने के लिए दुष्प्रेरित किया जिसके परिणाम स्वरूप उसने आत्महत्या कर ली और उसके द्वारा आपने ऐसा अपराध किया जो भारतीय दण्ड संहिता की धारा 306 के अधीन दण्डनीय है और इस न्यायालय के संज्ञान में है।
3. और मैं इसके द्वारा निदेश देता हूं कि आपका इस न्यायालय के द्वारा उक्त आरोप पर विचारण किया जाये।

दिनांक
10.1.2005

हस्ताक्षर
जिला एवं सत्र न्यायाधीश, इलाहाबाद

मुहर

आरोप

1. मैं आशुतोष प्रताप सिंह जिला एवं सत्र न्यायाधीश इलाहाबाद आप अ S/o श्री ब पर निम्नलिखित आरोप लगाता हूं।
2. (क) आपने 25 जून 2004 को रात्रि के लगभग 2:00 बजे 128, मालवीय नगर में चोरी की और उसके द्वारा आपने ऐसा अपराध किया जो भारतीय दण्ड संहिता की धारा 380 के अधीन दण्डनीय है और सत्र न्यायालय के संज्ञान में है।

(ख) आपने 25 जून 2004 को रात्रि के लगभग 2:00 बजे 128, मालवीय नगर में चोरी करने के लिए किसी व्यक्ति को मृत्यु कारित करने की तैयारी करके चोरी की और उसके द्वारा आपने ऐसा अपराध किया जो भारतीय दण्ड संहिता 1860 की धारा 382 के अधीन दण्डनीय है और सत्र न्यायालय के संज्ञान में है।

3. और मैं इसके द्वारा आदेश देता हूं कि आपका उक्त न्यायालय द्वारा उक्त आरोपों पर विचारण किया जाये।

दिनांक
11.01.05
मुहर

हस्ताक्षर
जिला एवं सत्र न्यायाधीश
इलाहाबाद (उ.प्र.)

III. पूर्व दोषसिद्धि के पश्चात् चोरी का आरोप

न्यायालय न्यायिक मजिस्ट्रेट (प्रथम श्रेणी), उत्तरी मेरठ (उ.प्र.)
प्रकरण संख्या 1577/2005
उत्तर प्रदेश राज्य
बनाम
अ S/o श्री ब जाति ..... उम्र 30 वर्ष
R/o 15, सदर बाजार, मेरठ (उ.प्र.)

आरोप

1. मैं A.P. Singh न्यायिक मजिस्ट्रेट (प्रथम वर्ग) उत्तरी मेरठ (उ.प्र.) आप अ S/o श्री ब पर निम्न आरोप लगाता हूं।
2. आपने 15 मार्च 2004 को 145, आदर्श नगर में चोरी की और उसके द्वारा आपने ऐसा अपराध किया जो भारतीय दण्ड संहिता 1860 की धारा 380 के अधीन दण्डनीय है और न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी के संज्ञान में है। और आप, उक्त अ S/o श्री ब पर यह भी आरोप है कि आप उक्त अपराध करने से पूर्व अर्थात् 25 दिसम्बर 2003 को न्यायिक मजिस्ट्रेट (प्रथम श्रेणी), गाजियाबाद उ.प्र. द्वारा भारतीय दण्ड संहिता 1860 के अध्याय 17 के अधीन तीन वर्ष की अवधि के लिए कारावास से दण्डनीय अपराध के लिए अर्थात् चुराई हुयी संपत्ति को उसे चुराई हुयी जानते हुए बेईमानी से प्राप्त करने के लिए भा. दं. सं. 1860 की धारा 411 के अधीन दोषसिद्ध किये गये थे जो दोषसिद्धि अब तक पूर्णतया प्रवृत्त और प्रभावशील है और अब भा. दं. सं. की धारा 75 के अधीन परिवर्तित दण्ड से दण्डनीय हैं।
3. और मैं इसके द्वारा निदेश देता हूं कि आपका विचारण किया जाये।

दिनांक
मुहर

हस्ताक्षर
न्यायिक मजिस्ट्रेट (प्रथम वर्ग)
उत्तरी मेरठ (उ.प्र.)

IV. भारतीय दण्ड संहिता की धारा 326 सपठित धारा 149 के अन्तर्गत आरोप बनाइए।

न्यायालय न्यायिक मजिस्ट्रेट (प्रथम श्रेणी), जयपुर (राजस्थान)
प्रकरण सं. 1477/2005
धारा 326/149 IPC
राजस्थान राज्य अभियोजक
बनाम
(1) अ S/o श्री ब जाति ..... उम्र 30 वर्ष अभियुक्त
P/o 148 मालवीय नगर, जयपुर (राजस्थान)
(2) ख S/o श्री द जाति ..... उम्र
(3) ग .....
(4) घ .....
(5) ड .....

आरोप

1. मैं आशुतोष प्रताप सिंह न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी जयपुर आप अ S/o श्री ब, ख S/o श्री द, ग S/o श्री च, घ, ड पर यह आरोप विरचित करता हूं कि
2. आपने दिनांक 10.5.2004 को प्रातः के करीब 8 बजे धारदार हथियारों से सुसज्जित होकर विधिविरुद्ध जमात का गठन किया तथा एक सामान्य उद्देश्य के अग्रसरण में जगदीश चौक मन्दिर के पास प नामक व्यक्ति पर ऐसे धारदार हथियारों से जिससे मृत्यु कारित होना संभाव्य था साशय हमला कर उसे स्वेच्छया घोर उपहति कारित की जो भारतीय दण्ड संहिता 1860 की धारा 326 सपठित धारा 149 के अन्तर्गत दण्डनीय अपराध है और मेरे परसंज्ञान में है।
3. आप अपना अपराध स्वीकार करते हैं या अन्वीक्षा चाहते हैं।

दिनांक
मुहर

हस्ताक्षर
न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी (जयपुर)

V. धारा 307 IPC के अन्तर्गत आरोप

न्यायालय जिला एवं सत्र न्यायाधीश लखनऊ (उ.प्र.)
प्रकरण संख्या 1400/2005
धारा 307 भा. दं. सं.
उत्तर प्रदेश राज्य ..... अभियोजक
बनाम
अ S/o श्री ब जाति ..... उम्र 35 वर्ष अभियुक्त
निवासी C – 72 निराला नगर, लखनऊ

1. मैं आशुतोष प्रताप सिंह जिला एवं सत्र न्यायाधीश लखनऊ (उ.प्र.) आप अ S/o श्री ब पर यह आरोप विरचित करता हूं कि
2. आपने दिनांक 12.4.2004 को दिन के लगभग 3 बजे अशोका सिनेमा के पास अनिल कुमार पर इस आशय से तथा ऐसी परिस्थितियों में धारदार तलवार से वार किया कि यदि अनिल की मृत्यु हो जाती तो आप हत्या के अपराध के दोषी होते। आपका यह कृत्य भा. दं. सं. की धारा 307 के अन्तर्गत दण्डनीय अपराध है तथा मेरे संज्ञान में है।
3. आप अपना अपराध स्वीकार करते हैं या अन्वीक्षा चाहते हैं।

दिनांक
मुहर

हस्ताक्षर
जिला एवं सत्र न्यायाधीश, लखनऊ (उ.प्र.)

प्रश्न अभियुक्त अ पर ब के घर से साइकिल चुराने का अभियुक्त है। आरोप तैयार कीजिए।

न्यायालय न्यायिक मजिस्ट्रेट (प्रथम वर्ग) इलाहाबाद, (उ.प्र.)
प्रकरण संख्या 1999/2005
धारा 380 IPC
उत्तर प्रदेश राज्य ..... अभियोजक
बनाम
अ S/o स जाति ..... उम्र 30 वर्ष ..... अभियुक्त
निवासी सिविल लाइन्स, इलाहाबाद (उ.प्र.)

आरोप

1. मैं आशुतोष प्रताप सिंह न्यायिक मजिस्ट्रेट (प्रथम वर्ग) इलाहाबाद (उ.प्र.) आप अ S/o स पर निम्न आरोप लगाता हूं :-

2. आपने दिनांक 25 दिसम्बर 2004 को प्रातः लगभग 9 बजे ब के घर से उसकी साइकिल चुरायी और इसके द्वारा आपने ऐसा अपराध किया जो भारतीय दण्ड संहिता की धारा 380 के अन्तर्गत दण्डनीय अपराध है और इस न्यायालय के परिसंज्ञान में है।

3. मैं इसके द्वारा निदेश देता हूं कि आपका इस न्यायालय द्वारा उक्त आरोप पर विचारण किया जाये।

दिनांक
14.1.2005
मुहर

हस्ताक्षर
न्यायिक मेजिस्ट्रेट (प्रथम वर्ग)
इलाहाबाद, उ.प्र.

Part B - सैद्धान्तिक पक्ष आरोप (धारा 211-224)

I. परिभाषा [Section 2 (b) Cr.P.C.]:

आरोप को Cr.P.C. की धारा 2 (b) में इस प्रकार परिभाषित किया गया है, "आरोप के अन्तर्गत, जब आरोप में एक से अधिक शीर्ष हों, आरोप का कोई भी शीर्ष है।" यह परिभाषा पूर्ण नहीं है। आरोप का अभिप्राय है औपचारिक रूप से अभियुक्त पर यह आरोप करना कि उसने निश्चित तिथि को निश्चित व्यक्ति के विरुद्ध कोई निश्चित अपराध किया है। आरोप विरचित किये जाने का मुख्य उद्देश्य अभियुक्त को इस बात की जानकारी कराना है कि उसके विरुद्ध किस अपराध के कारित किये जाने का आरोप है और उसे अपने विरुद्ध आरोप में क्या प्रतिरक्षा लेनी है। अपराध का संज्ञान लेने से लेकर आरोप विरचित किये जाने से पूर्व तक की संपूर्ण प्रक्रिया जांच कहलाती है। आरोप विरचित किये जाने के पश्चात् ही मामले का सारभूत विचारण प्रारंभ होता है।

II. आरोप की अन्तर्वस्तु (धारा 211, 212, 213, 214):

आरोप में निम्न बातों को सम्मिलित किया जाना चाहिए :-

1. आरोप न्यायालय की भाषा (Section 272 Cr.P.C.) में तथा लिखित होना चाहिए।
2. उसमें मूल रूप से अपराध का वर्णन किया जाता है जो अभियुक्त के विरुद्ध आरोपित है। Cr.P.C. की धारा 211, 212, 213 में आरोप की अन्तर्वस्तु की चर्चा की गई है।
3. यदि अपराध का कोई नाम हो तो उस नाम का उल्लेख किया जायेगा जैसे चोरी, उद्दापन, लूट, सदोष मानव वध, हत्या आदि।
4. यदि अपराध का नाम नहीं है तो अपराध की परिभाषा की जानी चाहिए जैसे धारा 411-414 IPC में वर्णित अपराधों का कोई नाम नहीं है। यदि अपराध की कोई परिभाषा भी निश्चित न हो तो जो आपराधिक कृत्य किया गया है उस कृत्य का वर्णन किया जाना चाहिए।
5. उस विधि तथा धारा का उल्लेख किया जाता है जिसके अन्तर्गत अपराध किया गया है आरोप में दण्ड वाली धारा लगायी जाती है उस अपराध की परिभाषा वाली धारा नहीं जैसे हत्या में धारा 302 लगायी जायेगी धारा 300 नहीं लगायी जायेगी।
6. यदि दो या दो से अधिक व्यक्तियों ने सामान्य आशय के अग्रसरण में अपराध किया हो तो धारा 302/34 IPC लगायी जायेगी तथा यदि पांच से पांच से अधिक व्यक्तियों ने सामान्य उद्देश्य के अग्रसरण में हत्या का अपराध कारित किया हो तो धारा 302/149 IPC लगायी जायेगी।
7. वह व्यक्ति तथा संपत्ति जिसके विरुद्ध अपराध किया गया हो वर्णन करना चाहिए।
8. आरोप में अपराध करने का स्थान और समय भी लिखा जाना चाहिए।
9. यदि दो या दो से अधिक कृत्यों से अपराध हुआ है तो उसमें से गम्भीर अपराध का आरोप लगाया जाना चाहिए। (Section 71 IPC)
10. आपराधिक न्यासभंग तथा आपराधिक दुर्विनियोग में कुल राशि तथा कुल समय विहित किया जाता है।
11. यदि पूर्व दोषसिद्धि के आधार पर अभियुक्त को अधिक दण्ड से दण्डित किया जाना आवश्यक हो तो पूर्वदोषसिद्धि का आरोप लगाया जाना चाहिए। (Section 211 (7), 236, 298 Cr.P.C.)
12. यदि किसी अपराध के नाम का उल्लेख कर दिया गया है तो उसके तत्वों का उल्लेख करना आवश्यक नहीं है। ऐसी उपधारणा है कि अपराध के नाम में ही अपराध के गठन के आवश्यक तत्व उपस्थित होते हैं जैसे चोरी के अपराध के आरोप में उसमें पांच तत्व कब्जा, बिना सहमति, चल संपत्ति, बेईमानी, पूर्ण आशय, संपत्ति को हटाया जाना आदि सम्मिलित माने जायेंगे।

धारा 214 के अनुसार प्रत्येक अपराध का नाम तथा परिभाषा-का निर्वचन उस अधिनियम में होगा जिसके अन्तर्गत आरोप लगाया गया है।

III. आरोपों एवं विचारण का संयोग (धारा 218, 219, 220, 223):

धारा 218 के अन्तर्गत सामान्य सिद्धान्त यह है कि प्रत्येक अपराध के लिए पृथक-पृथक आरोप होगा और प्रत्येक आरोप के लिए पृथक विचारण होगा। इस प्रकार धारा 218 संयोजन को वर्जित करती हैं। जब तक अपराधों में आपस के संबंध न हो तब तक इस सामान्य नियम का पालन किया जाना चाहिए। यह प्रावधान इसलिये किया गया है क्योंकि –

1. संयुक्त विचारण से कुछ तकनीकी कठिनाइयां उत्पन्न हो सकती हैं जैसे सरकार की पूर्व अनुमति (Section 197 Cr.P.C.), परिवाद उचित व्यक्ति द्वारा प्रस्तुत किया जाना (Section 198 A, Section 199 Cr.P.C.) आदि।
2. दो भिन्न-भिन्न अपराधों का विचारण साथ-साथ चलने से न्यायालय का अमूल्य समय नष्ट हो सकता है।
3. ऐसा भी सभव है कि अभियुक्त अपना बचाव उचित रूप से न कर पाये तथा उसके साथ अन्याय हो जाये।
4. दो मामलों में अभियोजन पक्ष भी गुमराह हो सकता है तथा दोषी व्यक्ति भी बिना अपने कर्मों का फल भोगे सजा से बच सकता है।

अतः विधि का मूल नियम यही है कि प्रत्येक अपराध के लिए पृथक आरोप विरचित किया जाना चाहिए तथा पृथक ही विचारण किया जाना चाहिए। परन्तु इस सामान्य नियम के कुछ अपवाद हैं, जहां कुछ अपराधों का विचारण साथ-साथ किया जा सकता है। इन परिस्थितियों में यह सारभूत नहीं है कि आरोप अलग-अलग विरचित किया गया है या संयुक्त रूप से एक आरोप विरचित किया गया है। यह अपवाद इस प्रकार है :-

(1) अभियुक्त का आवेदन (धारा 218 एवं 223 के परन्तुक):

अभियुक्त की इच्छा या आवेदन पर धारा 218 के परन्तुक के अन्तर्गत ऐसा अपराधी जिसने दो या अधिक अपराध किये हैं का विचारण दो या अधिक अपराधों के लिए एक साथ किया जा सकता है। न्यायालय संयुक्त विचारण का आदेश तभी देगा जब न्याय के हित में तथा अभियुक्त के हित में ऐसा करना उचित हो।

धारा 223 के परन्तुक के अन्तर्गत अपराध करने वाले दो या दो से अधिक व्यक्ति हों तो अभियुक्त के हित का संरक्षण करने के लिए और न्याय के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए उनको छोड़ा जा सकता है और उनके लिए एक विचारण किया जा सकता है।

(2) एक ही प्रकार के अपराध (धारा 219):

धारा 219 विहित करती है अगर अपराधी ने एक प्रकार के दो या दो से अधिक अपराध किये हैं तो पिछले 12 महीनों की अवधि में उसके द्वारा किये गये अधिकतम तीन अपराधों का संयोजन किया जा सकता है और संयुक्त विचारण किया जा सकता है जैसे अभियुक्त ने पहले चोरी की उसके उपरांत उसने चोरी की तथा इसके बाद तीसरी बार पुनः चोरी की तो तीनों अपराधों का विचारण एक साथ किया जा सकता है [Section 219 (1)]। अपराध एक ही प्रकार के तब समझे जाते हैं जब वे IPC व अन्य विधि की एक ही धारा के अधीन समान दण्ड से दण्डनीय हों। [Section 219 (2)]

(3) भिन्न अपराधों का संयुक्त विचारण (धारा 220):

धारा 220 के अन्तर्गत अपराधी के द्वारा किये गये भिन्न-भिन्न अपराधों का विचारण संयुक्त रूप से निम्न परिस्थितियों में किया जा सकता है :-

1. जब एक ही संव्यवहार के दौरान दो या अधिक अपराध किये गये हों ये अपराध तीन से भी अधिक हो सकते हैं। जैसे पहले किसी बालिका का अपहरण किया गया (Section 363 IPC)। उसके पश्चात् उसे दूसरे स्थान पर ले जाकर बलात्कार किया गया (Section 376)। उसके पश्चात् उसकी हत्या कर दी गयी (Section 302) और अन्त में उसकी लाश को छिपा दिया गया (Section 201 IPC)। इन चारों अपराधों का विचारण एक साथ किया जा सकता है क्योंकि ये चारों अपराध एक ही संव्यवहार के भाग हैं। भारतीय साक्ष्य अधिनियम 1872 की धारा 6 भी यही कहती है कि एक संव्यवहार के दौरान किये गये कार्य सुसंगत होते हैं चाहे वह कृत्य भिन्न-भिन्न स्थान या समय पर किये गये हों।
2. यदि अभियुक्त के द्वारा किये गये विभिन्न आपराधिक कृत्य एक मुख्य अपराध का गठन करते हैं तो आरोप एक ही अपराध का लगाया जा सकता है। यदि सभी कृत्यों का आरोप लगाया भी गया है तो भी सब की सजा धारा 71 IPC के अनुसार साथ-साथ चलेगी। जैसे किसी व्यक्ति ने लूट कारित की (Section 392,

IPC)। लूट कारित कते समय उसने किसी व्यक्ति को साधारण उपहति कारित की (Section 323 IPC)। इस प्रकार यदि इन दोनों अपराधों को मिला दिया जाये तो एक नया अपराध (Section 394 IPC) के अन्तर्गत बनता है। यहां मात्र 394 IPC के अन्तर्गत लूट करते समय उपहति कारित करना। (यहां मात्र 394 IPC के अन्तर्गत आरोप लगाया जा सकता है)

3. यदि अपराधी ने पहले प्रयत्न किया हो तो ऐसे प्रयत्न और उसके पश्चात् कारित अपराध दोनों को जोड़कर संयुक्त विचारण किया जा सकता है।
4. आपराधिक न्यास भंग (Section 405 IPC) और आपराधिक दुर्विनियोग (Section 403) के कृत्यों को जोड़ा जा सकता है।

(4) **अभियुक्तों का संयोजन (धारा 223):**

निम्न परिस्थितियों में दो या दो से अधिक अभियुक्तों का एक साथ विचारण किया जा सकता है :-

1. एक ही संव्यवहार में दो या दो से अधिक अपराधियों द्वारा एक ही अपराध किया जाना। (IPC की धारा 34/149/120 B का नियम ऐसे ही मामलों में लागू होता है।)
2. जहां दो या अधिक व्यक्तियों द्वारा एक ही प्रकार का अपराध किया जाये। (धारा 219 के अन्तर्गत 12 महीनों के दौरान किये गये तीन अपराधों का नियम)
3. जब दो या अधिक व्यक्ति मिल कर किसी अपराध को भागतः करते हैं जिससे कोई बड़ा अपराध पूर्ण हो जाता है तो सभी व्यक्तियों का एक साथ विचारण किया जा सकता है। यहां भी धारा 34/149/120 B IPC को लागू किया जा सकता है। जैसे A, B, C मिलकर Y को एक-एक करके जहर देते हैं। परिणाम होता है Y की मृत्यु। यहां A, B, C का विचारण संयुक्त रूप से किया जा सकता है।
4. वह व्यक्ति जो दुष्प्रेरण करता है, दूसरा जो दुष्प्रेरण के अनुरूप अपराध करता है तो दोनों का विचारण एक साथ किया जा सकता है। इसी प्रकार षड्यंत्रकारियों तथा षड्यंत्र के परिणामस्वरूप अपराध करने वालों को छोड़ा जा सकता है।
5. चुराई हुयी संपत्ति के विषय में अपराध करने वाले व्यक्तियों का एक ही विचारण किया जा सकता है। अर्थात् चोरी करने वाले, चोरी की संपत्ति प्राप्त करने वाले, चोरी की संपत्ति छिपाने वाले आदि का विचारण एक साथ किया जा सकता है।
6. कूटकृत सिक्के के विषय में अपराध करने वाले व्यक्तियों का भी एक साथ विचारण किया जा सकता है।

IV. आरोप में परिवर्तन (Section 216, 464 Cr.P.C.):

निर्णय से पूर्व मामले के किसी भी प्रक्रम में न्यायालय द्वारा आरोप में परिवर्तन किया जा सकता है। इस प्रकार के परिवर्तन के निम्न प्रभाव हो सकते हैं :-

1. यदि आरोप में परिवर्तन किये जाने से अपराधी के विरुद्ध एक बिल्कुल नया अपराध बन जाता है तो ऐसी दशा में धारा 464 के उपबन्धों के अन्तर्गत उन्हें विचारण किया जाना चाहिए।
2. यदि परिवर्तन मामूली प्रकृति का है तथा की गई कार्यवाही पर उसका कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है तो ऐसी दशा में न्यायालय आगे की कार्यवाही कर सकता है।
3. न्याय या अभियुक्त के हित में यदि न्यायालय उचित समझे तो ऐसे गवाहों का जिनका परीक्षण किया जा चुका है उनको पुनः बुलाया जा सकता है या उनको उपस्थित होने के लिए समन जारी किया जा सकता है। (Section 217 Cr.P.C.)
4. यदि परिवर्तन के कारण ऐसा आरोप या अपराध बनता है जिसका अभियोजन समुचित सरकार की पूर्ण अनुमति से ही किया जा सकता है तो ऐसी दशा में न्यायालय की कार्यवाही को तब तक के लिए मुल्तवी कर दिया जायेगा जब तक सरकार की ऐसी अनुमति प्राप्त नहीं हो जाती।
5. यदि परिवर्तन के कारण ऐसा अपराध बन गया हो जिसके संज्ञान के लिए S. 195 - 199 Cr.P.C. के अन्तर्गत किसी पूर्व शर्त को पूर्ण किया जाना आवश्यक हो जैसे पीड़ित व्यक्ति द्वारा परिवाद प्रस्तुत किया जाना आदि। तो कार्यवाही को तब तक आगे नहीं बढ़ाया जायेगा जब तक पूर्व शर्त को पूर्ण न कर लिया गया हो।

V. आरोप में गलती (Section 215, 464 Cr.P.C.):

आरोप में अपराध का वर्णन स्पष्ट शब्दों में किया जाना चाहिए। अतः ऐसा कोई भी आरोप जिसकी रचना Cr.P.C. की धारा 211, 212 और 213 के नियमों के अवहेलना में की गई हो तो ऐसा कहा जायेगा कि उस आरोप में गलती हुयी है। आरोप में गलती हो जाने के संबंध में प्रमुख नियम इस प्रकार हैं :-

1. यदि अपराधी के विरुद्ध आरोप लगाये जाने में कोई गलती हो जाती है तो ऐसी परिस्थिति में ऐसी गलती का प्रभाव ऐसी गलती की प्रकृति और उसके परिणामों के आधार पर तय किया जाता है।

2. यदि गलती साधारण प्रकृति की है जिसका विचारण की गुणवत्ता पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता तो मात्र गलती के आधार पर निर्णय या आदेश को अपास्त नहीं किया जा सकता।
3. यदि गलती बड़ी है या सारवान है जिसकी वजह से अभियुक्त भुलावे में पड़ गया है और सही प्रकार से अपना बचाव नहीं कर पाया है तो ऐसी दशा में अपीलीय न्यायालय या पुनरीक्षण न्यायालय अधीनस्थ न्यायालय के निर्णय को अपास्त कर सकता है और पुनः विचारण का आदेश दे सकता है।
4. स्वयं की गलती दोषसिद्धि को अपास्त करने का आधार नहीं है।

VI. अनुकल्पतः आरोप (Alternative Charge, Section 221):

जब यह निश्चित न हो कि अभियुक्त ने कौन सा अपराध किया है परन्तु यह निश्चित हो कि दो या अधिक अपराधों में से कोई अपराध किया है तो ऐसी दशा में अनुकल्पतः आरोप लगाये जा सकते हैं जैसे किसी व्यक्ति के कब्जे से चुराई हुयी संपत्ति प्राप्त की जाती है उस पर चोरी करने [Section 114 (a) IEA 1872] या चुराई हुयी संपत्ति यह जानते हुए कि वह चुराई हुई है प्राप्त करने का आरोप अनुकल्पतः लगाया जा सकता है।

VII. बिना आरोप के दोषसिद्धि (धारा 221):

प्रश्न - क्या किसी व्यक्ति को ऐसे अपराध के लिए दोषसिद्ध किया जा सकता है जिसके लिए उसके विरुद्ध आरोप लगाया ही नहीं गया?

उत्तर - हां। ऐसा किया जा सकता है जब अभियुक्त के विरुद्ध एक आरोप का विचारण किया गया है और विचारण के दौरान दूसरा अपराध साबित हो गया है तो उसे उस अपराध के लिए दोषसिद्ध किया जा सकता है भले ही उस पर आरोप न लगाया गया हो। [Section 221 Cr.P.C.]

जैसे - पहले आरोप धारा 302 का लगाया गया परन्तु हत्या साबित नहीं हो पायी परन्तु विचारण के दौरान यह तथ्य सामने आये कि अभियुक्त ने धारा 304 ब दहेज मृत्यु के अन्तर्गत अपराध किया है तो उसे धारा 304 ब के अन्तर्गत दण्डित किया जा सकता है परन्तु यदि कोई भिन्न अपराध पाया जाता है तो उसके लिए क्या आरोप लगाया जाना चाहिए तथा पुनः विचारण भी किया जाना चाहिए जैसे - यदि आरोप धारा 380 IPC के अन्तर्गत लगाया गया है तो अभियुक्त को धारा 302 IPC के अन्तर्गत तब तक दण्डित नहीं किया जा सकता जब तक नया आरोप लगाकर पुनः विचारण न किया गया हो।

VIII. आंशिक अपराध के लिए दण्ड (Section 222 Cr.P.C.):

प्रश्न - क्या किसी अभियुक्त को आंशिक अपराध के लिए दण्डित किया जा सकता है?

उत्तर - धारा 222 के अन्तर्गत अभियुक्त को आंशिक अपराध के लिए दण्डित किया जा सकता है यदि अभियुक्त के विरुद्ध दो या दो से अधिक आपराधिक कृत्यों का आरोप है जो मुख्य अपराध बनाते हैं और ऐसा मुख्य अपराध उसके विरुद्ध साबित नहीं हो पाता है तो जितना भी भाग उसके विरुद्ध साबित हो पाया है उसके लिए उसे दोषसिद्ध और दण्डित किया जा सकता है जैसे किसी व्यक्ति पर धारा 325 IPC के अन्तर्गत आरोप लगाया जाता है परन्तु यह साबित कर दिया जाता है कि उसने गंभीर उपहति घोर और आकस्मिक प्रकोपन में कारित की थी उसे धारा 335 IPC के अन्तर्गत दण्डित किया जा सकता है।

IX. आरोप वापस लिया जाना (धारा 224):

धारा 224 विहित करती है कि -

1. जब अभियुक्त के विरुद्ध दो या दो से अधिक आरोप हों और जिनमें से एक या अधिक साबित हो जाते हैं और शेष साबित नहीं होते हैं तो
   (क) जो अपराध उसके विरुद्ध साबित हो गये हैं उनके लिए उसे दोषसिद्ध किया जा सकता है।
   (ख) जो आरोप उसके विरुद्ध साबित नहीं हुये हैं उनके लिए उसे दोषमुक्त किया जायेगा और ऐसे आरोपों को अभियोजन के द्वारा वापस लिया गया माना जायेगा।
2. ऐसे आरोप जिनके लिए अभियुक्त को दोषमुक्त कर दिया गया है उसके लिए नया विचारण सामान्यतः वर्जित है जब तक कि धारा 300 में वर्णित विहित शर्तों को पूरा नहीं कर दिया जाता है। [Article 20 (2)]
3. यदि दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील की जाती है और अपीलीय न्यायालय ऐसी दोषसिद्धि को अपास्त कर दे तो इसका परिणाम यह होगा कि वह दोषमुक्त माना जायेगा और इसी के अनुसार विचारण न्यायालय कार्यवाही करेगा।

विचारण (Trial) (Sections 225 – 265)

विचारण के मूल सिद्धान्त :

दण्ड प्रक्रिया संहिता में दिये गये विचारण सम्बन्धी उपबन्धों का विश्लेषण करने से यह ज्ञात होता है कि यह उपबन्ध कुछ सिद्धान्तों पर आधारित हैं और इसका स्रोत प्राकृतिक न्याय है। विचारण के मूल सिद्धान्त निम्न हैं :-

(1) न्यायालय की स्वतंत्रता :

सरकार के तीन अंग विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका है। न्यायपालिका का मूल कार्य न्याय प्रशासन है। न्यायपालिका सरकार का अभिन्न अंग है किन्तु न्याय प्रशासन के क्षेत्र में न्यायालय को स्वतंत्र माना जाता है। राज्य की न्यायपालिका उच्च न्यायालय द्वारा नियंत्रित होती है। इसलिये कार्यपालक मजिस्ट्रेट और न्यायिक मजिस्ट्रेट में अन्तर दिखायी देता है। न्यायपालिका की स्वतंत्रता की वजह से ही सरकार के विरुद्ध कार्यवाहियां न्यायालय में होती हैं।

(2) न्यायाधीश और मजिस्ट्रेट की स्वतंत्रता :

प्राकृतिक न्याय के सिद्धानत के अनुरूप न्यायाधीश और मजिस्ट्रेट निष्पक्ष और स्वतंत्र होने चाहिए क्योंकि कोई हितबद्ध व्यक्ति न्यायाधीश के रूप में कभी भी कार्य नहीं कर सकता। कोई भी व्यक्ति अपने ही मामले में न्यायाधीश नहीं बन सकता। मूल कारण यह है कि न्याय केवल किया ही नहीं जाना चाहिए बल्कि यह दिखायी देना चाहिए कि न्याय किया गया है। यदि कोई मजिस्ट्रेट यह पाता है कि वह किसी मामले में हितबद्ध व्यक्ति हो सकता है तो उसे उस मामले में कार्यवाही नहीं करनी चाहिए तथा मामला दूसरे न्यायाधीश को अन्तरित कर देना चाहिए (धारा 479)। जब कोई मजिस्ट्रेट स्वयं किसी मामले का संज्ञान करता है तो मजिस्ट्रेट का यह कर्तव्य है कि वह अभियुक्त से यह पूछे कि वह उस मजिस्ट्रेट द्वारा मामले का विचारण चाहता है या नहीं। (धारा 191)

(3) अभियुक्त को अभियोजन का कारण बताया जाना :

अभियुक्त को आरोपों का बताया जाना आबद्धकारी प्रावधान हैं। सत्र न्यायालय के विचारण में एवं वारण्ट मामलों के विचारण में आरोप औपचारिक रूप से तैयार किये जाते हैं (धारा 228, 240, 246)। समन मामलों तथा संक्षिप्त विचारण में अभियोजन के कारणों का सारांश अभियुक्त को बताया जाता है। [Section 251, 262, Article 22 (1) Constitution]

(4) अभियुक्त को सलाह लेने और बचाव करने का अधिकार :

संविधान के अनुच्छेद 22 (2) में प्रत्येक अभियुक्त को यह अधिकार दिया गया है कि वह अपनी इच्छा से वकील से सलाह ले सकता है तथा अपना बचाव कर सकता है। (धारा 303 Cr.P.C.)

(5) निःशुल्क विधिक सहायता का अधिकार :—

यदि अभियुक्त अपना बचाव करने के लिए किसी अधिवक्ता को नियुक्त करने की स्थिति मे नहीं है तो सरकार का कर्तव्य है कि उसके बचाव में किसी अधिवक्ता को नियुक्त करे और नियुक्त किया गया अधिवक्ता बचाव करने में सक्षम होना चाहिए। [Section 304 Cr.P.C. + Article 39 (a)]

(6) विचारण करने वाला न्यायालय सक्षम होना चाहिए :

जिस न्यायालय में अभियुक्त का विचारण किया जा रहा है वह न्यायालय सक्षम अधिकारिकता वाला होना चाहिए।

(7) न्यायालय का खुला होना :

न्याालय में कार्यवाही खुले न्यायालय मे की जानी चाहिए। बन्द कमरे में कार्यवाही को वर्जित किया गया है। इस नियम के कुछ अपवाद हैं जैसे बलात्कार और पारिवारिक मामलों में कार्यवाही बन्द कमरे में की जाती है। (Section 327 Cr.P.C.)

(8) अभियुक्त की उपस्थिति [Section 205 (2), 273, 279]:

सामान्य सिद्धान्त यह है कि अभियोजन की कार्यवाही अभियुक्त की उपस्थिति में की जानी चाहिए। इसलिए सुनवाई के दिन अभियुक्त हाजिर होना चाहिए। यदि वह अभिरक्षा में है तो ऐसी दशा में जेल के अधिकारी उसे न्यायालय में पेश करें। इस नियम के कुछ अपवाद धारा 206, 253, 299 में दिये गये हैं। यदि उसको

जमानत पर छोड़ दिया गया है तो ऐसी दशा में सुनवाई की तारीख उसे अवगत करवायी जानी चाहिए। इस नियम के तीन अपवाद हैं :-

1. उद्घोषित अपराधी के विरुद्ध न्यायालय में जो कार्यवाही होती है वह उसकी अनुपस्थिति में होती है। (धारा 299)
2. यदि शान्ति व्यवस्था बनाये रखने के लिए यह आवश्यक हो कि उसे न्यायालय में प्रस्तुत न किया जाये तो कार्यवाही उसकी अनुपस्थिति में की जा सकती है। [Section 268 (2) (B) Cr.P.C.]
3. छोटे मामलों में विचारण अभियुक्त की अनुपस्थिति में किया जा सकता है। (धारा 206, 253)

(9) अभियुक्त को दस्तावेजों की प्रतियां दिया जाना :

विचारण से संबंधित जो भी दस्तावेज हैं उसकी एक प्रति अभियुक्त को निःशुल्क देनी चाहिए (धारा 207, 208) में इसके बारे में प्रावधान किया गया है। मजिस्ट्रेट विचारण प्रारंभ करने से पहले इस बात की जांच करता है कि अभियुक्त को धारा 207 या 208 में वर्णित प्रतिलिपियां उपलब्ध करा दी गयी हैं या नहीं।

(10) कार्यवाहियों का अभियोजन के द्वारा शुरू किया जाना :

वे सभी संज्ञेय अपराध जिनका शमन नहीं होता है, सरकार के द्वारा संस्थित किये जाते हैं। प्रत्येक मामले में अभियोजन पक्ष द्वारा ही कार्यवाही प्रारंभ की (धारा 226) जाती है। यदि राज्य सरकार किसी व्यक्ति के विरुद्ध कार्यवाही नहीं करना चाहती तो वह मामले को वापस ले सकती है। (धारा 321 Cr.P.C.)

(11) कार्यवाही के लिए प्रथम दृष्टया मामला होना :

अभियुक्त के विरुद्ध प्रथम दृष्टया मामला होना चाहिए अथवा न्यायालय के द्वारा अभियुक्त को उन्मोचित कर दिया जाता है। यदि प्रथम दृष्टया मामला नहीं बनता है तो Section 203 Cr.P.C. के अन्तर्गत परिवाद को भी खारिज कर दिया जाता है। (Section 227 Cr.P.C.)

(12) अभियुक्त के निर्दोष होने की उपधारणा :

जब किसी अभियुक्त को न्यायालय के समक्ष पेश किया जाता है तो न्यायालय उपधारणा करेगा कि वह निर्दोष है परन्तु आधुनिक विधियों में इस विषय में कुछ परिवर्तन किये गये हैं। (Section 113 B, Section 114 A, Section 114 IEA, 1872)

(13) सबूत का भार अभियोजन पक्ष पर :

आपराधिक मामलों में सबूत का भार हमेशा अभियोजन पक्ष पर होता है। इस प्रकार के सभी विचारणों में अभियोजन पक्ष का साक्ष्य पहले प्रस्तुत किया जाता है। [Section 102 IEA]

(14) संदेह से परे साबित करने का नियम :

अपराध न्यायशास्त्र का मूल सिद्धान्त यह है कि अभियोजन के मामले में यदि अभियोजन का मामला पारिस्थितिजन्य साक्ष्य (circumstantial evidence) पर आधारित है तो अभियोजन द्वारा प्रत्येक कड़ी को जोड़ा जाना चाहिए तथा प्रत्येक बात को संदेह से परे साबित किया जाना चाहिए। यदि न्यायालय के मस्तिष्क में कोई संदेह उत्पन्न हो जाता है तो संदेह का लाभ अभियुक्त को दिया जाता है।

(15) बचाव पक्ष के लिए साबित करने की सीमा :

शंका से परे साबित करने का नियम मात्र अभियोजन के लिए लागू होता है। बचाव पक्ष के लिए यह नियम लागू नहीं होता। बचाव के संबंध में संभावना का प्रतिपादन ही काफी है। इसे संभावनाओं की प्रबलता (Preponderence of Evidence) कहते हैं।

(16) दोनों पक्षों को सुना जाना चाहिए :

मजिस्ट्रेट या न्यायाधीश उस समय तक अपना निर्णय नहीं दे सकता जब तक दोनों पक्षों की सुनवाई पूर्ण न हो जाये जब अभियोजन पक्ष का साक्ष्य पूरा हो जाये तो अभियुक्त को धारा 313 के अन्तर्गत परीक्षित किया जाना चाहिए।

(17) साक्षियों को बुलाने की शक्ति :

मामले के किसी भी प्रक्रम में न्यायालय के द्वारा किसी भी व्यक्ति को साक्षी के रूप में उपस्थित होने का निर्देश दिया जा सकता है। न्यायालय किसी दस्तावेज या वसतु को पेश करने का आदेश भी दे सकता है। [Section 91 Cr.P.C., Section 165 IEA, Order 16, Rule 6 CPC]

(18) दण्ड की मात्रा पर सुनवाई :

जब विचारण पूरा हो जाता है और अभियुक्त को दोषी साबित कर दिया जाता है तो न्यायालय के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह दण्ड की मात्रा के निर्धारण के लिए अभियुक्त को सुनवाई का अवसर दे [Section 235 (2) and 248 (2)]। इस नियम के दो अपवाद हैं - जो धारा 325 तथा धारा 360 में वर्णित हैं। अभियोजन को भी अधिक दण्ड देने के लिए साक्ष्य देने का हक है।

(19) मृत्युदण्ड की सम्पुष्टि :

सत्र न्यायालय जब मृत्युदण्ड का आदेश देता है तो ऐसे आदेश की सम्पुष्टि उच्च न्यायालय के दो न्यायाधीशों की खण्डपीठ द्वारा की जानी चाहिए। उच्च न्यायालय की सम्पुष्टि के बिना मृत्युदण्ड का निष्पादन नहीं किया जा सकता। (धारा 366, 371)

(20) अपील करने का अधिकार :

दोषसिद्धि के सभी मामलों में अभियुक्त को अपीलीय न्यायालय में अपील दायर करने का अधिकार है (धारा 372-394)। सामान्यतः छोटे मामलों में और संस्वीकृति के मामलों में अपील नहीं की जा सकती लेकिन ऐसे मामलों में भी दण्ड की प्रकृति के आधार पर अपील की जा सकती है। निम्न मामलों में अपील नहीं हो सकती यदि -

1. HC ने - 6 माह की सजा या + 1000 रुपये का जुर्माना
2. Session Judge - 3 माह की सजा/+ 200 रुपये जुर्माना
3. M.M. - 3 माह की सजा/+ 200 रुपये जुर्माना
4. J.M. Ist - 100 रुपये का जुर्माना
5. संक्षिप्त विचारण (धारा 260-265) - 200 रुपये का जुर्माना

(21) दोहरा दण्ड **[Section 300/Article 20 (2)]** - **एक बार दोषसिद्धि व दोषमुक्त व्यक्ति का उसी अपराध में दोबारा विचारण नहीं किया जायेगा**

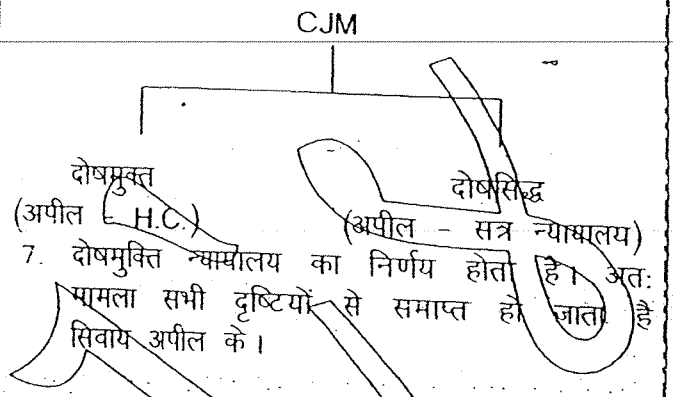
प्रश्न - उन्मोचन एवं दोषमुक्ति में क्या अन्तर है?

उत्तर -

उन्मोचन (Discharge)	दोषमुक्ति (Acquittal)
1. आरोप विरचित किये जाने के पूर्व जब प्रथम दृष्टया मामला न बनता हो तो अभियुक्त को उन्मोचित कर दिया जाता है।	1. यदि प्रथम दृष्टया मामला बनता हो तो अभियुक्त के विरुद्ध आरोप विरचित किया जाता है। विचारण की समाप्ति के उपरांत किसी व्यक्ति को दोषमुक्त किया जाता है।
2. उन्मोचन शब्द का प्रयोग तब किया जाता है जब अभियुक्त के विरुद्ध प्रथम दृष्टया मामला बनता ही न हो।	2. इसमें प्रथम दृष्टया मामला तो बनता है किन्तु अभियोजन पक्ष पर्याप्त साक्ष्य प्रस्तुत करने में असफल रहता है। अतः अभियुक्त को दोषमुक्त कर दिया जाता है।
3. उन्मोचन के उपरांत अन्वेषण जांच और विचारण को पुनः आरंभ किया जा सकता है।	3. अन्वेषण जांच और विचारण को पुनः आरंभ नहीं किया जा सकता क्योंकि अनुच्छेद 20 (2) तथा Section 300 Cr.P.C. में इसकी मनाही की गयी है।
4. यह एक न्यायिक या गैर न्यायिक कार्यवाही हो सकती है।	4. यह एक न्यायिक कार्यवाही ही होती है।
5. उन्मोचन से संबंधित विभिन्न प्रावधान - (क) सत्र न्यायालय - Sec. 227 Cr.P.C. (ख) वारण्ट (Police) – Sec. 239 Cr.P.C. (ग) वारण्ट (Complaint) – Sec. 245 Cr.P.C. (घ) समन मामला - Sec. 251 Cr.P.C.	5. दोषमुक्ति से संबंधित प्रावधान - (क) सत्र न्यायालय - Section 232 (ख) वारण्ट मामला - Section 248 (ग) समन मामला - Section 225, 258
6. उन्मोचन के विरुद्ध अपील या प्रार्थना पत्र उच्चतर न्यायालय में किया जाता है जैसे यदि उन्मोचन JM Ist द्वारा किया गया है तो उसके विरुद्ध प्रार्थना पत्र CJM को प्रस्तुत किया	6. दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील सामान्यतः उच्च न्यायालय में की जाती है।

जायेगा।

7. उन्मोचन को निर्णय नहीं माना जाता। अतः मामला खुला ही रहता है।



7. दोषमुक्ति न्यायालय का निर्णय होता है। अतः मामला सभी दृष्टियों से समाप्त हो जाता है सिवाय अपील के।

प्रश्न - परिवाद को खारिज करने, अभियुक्त को उन्मोचित करने तथा दोषमुक्त करने के बीच भेद बताइये। इनमें से प्रत्येक मामले में क्या उपचार है? *(RJS 1989)*

उत्तर -

I. **परिवाद खारिज करना** :

परिवाद धारा 200 सपठित धारा 190 (1) (a) Cr.P.C. के अन्तर्गत मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। परिवाद वहां खारिज किया जाता है जहां परिवादी एवं साक्षियों के शपथ पर किये कथन (Section 200 Cr.P.C.) तथा जांच एवं अन्वेषण (Section 202 Cr.P.C.) के परिणाम पर विचार करने के पश्चात् मजिस्ट्रेट की राय में कार्यवाही करने का खारिज करने के लिए कोई पर्याप्त आधार (Section 203 Cr.P.C.) न हो।

उपचार -

1. धारा 398 Cr.P.C. के अन्तर्गत उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय का दरवाजा खटखटाया जा सकता है। H.C. या Session Court इस संबंध में जांच का आदेश दे सकते हैं। जांच के उपरांत यदि प्रथम दृष्टया मामला बनता हो तो कार्यवाही पुनः आरंभ की जा सकती है।
2. पुनः परिवाद दायर किया जा सकता है यदि परिस्थितियों में परिवर्तन हो गया हो जैसे कोई नया साक्ष्य या गवाह मिल गया हो।

II. **उन्मोचन** :

उन्मोचन आरोप विरचित करने के पूर्व किया जाता है जहां अभियुक्त के विरुद्ध प्रथम दृष्टया मामला न बनता हो वहां अभियुक्त को उन्मोचित किया जा सकता है।

उपचार -

1. पुलिस द्वारा पुनः अन्वेषण प्रारंभ किया जा सकता है यदि साक्ष्य सामने आ जाये तो पुनः चालान [Section 173 (2) and Section 173 (8) Cr.P.C.] पेश किया जा सकता है। पीड़ित परिवादी द्वारा भी पुनः कार्यवाही करने का अनुरोध किया जा सकता है। (धारा 200)
2. मजिस्ट्रेट मामले की जांच स्वयं कर सकता है। [Section 202 Cr.P.C.]
3. उन्मोचित करने वाले न्यायालय से उच्चतर न्यायालय में प्रार्थना पत्र दिया जा सकता है।

III. **दोषमुक्ति** :

मामले के गुणावगुण (on merit) पर विचार करने के उपरांत अभियुक्त के विरुद्ध आरोप साबित न हो पाने पर दोषमुक्ति का आदेश दिया जा सकता है।

उपचार -

1. उच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है। (धारा 372-394)
2. जिन मामलों में अपील न होती हो वहां पुनरीक्षण याचिका प्रस्तुत की जा सकती है। (धारा 395-405)

Transfer of Criminal Cases [Sections 406 – 412]

S. No.	धारा	उच्चतर न्यायालय	अधीनस्थ न्यायालय	प्रार्थी	अनुचित प्रार्थना पत्र	कारण अभिलिखित करना (धारा 412)
1.	406 Art. 139 (a)	सुप्रीम कोर्ट S.C.	(a) एक H.C. से दूसरे H.C. (b) एक H.C. के अधीनस्थ न्यायालय से दूसरे H.C. के अधीनस्थ न्यायालय में	(a) महान्यायवादी (Article 76) (b) महाधिवक्ता (Article 165) (c) पीड़ित पक्षकार	जुर्माना Rs. 1000/-	आवश्यक नहीं
2.	407	हाई कोर्ट H.C.	(a) सत्र न्यायालय (b) CJM (c) JM – I	(a) अधीनस्थ न्यायालय (b) पीड़ित पक्षकार (c) स्वविवेक	जुर्माना Rs. 1000/-	आवश्यक नहीं
3.	408, 409	सत्र न्यायालय	(a) Add. S.J. (b) Asst. S.J. (c) CJM	(a) अधीनस्थ न्यायालय (b) पीड़ित पक्षकार (c) स्वविवेक	जुर्माना Rs. 200/-	कारण अभिलिखित करना – आवश्यक
4.	410	CJM	अधीनस्थ न्यायालय	(a) पीड़ित पक्षकार (b) स्वविवेक	–	आवश्यक
5.	411	DM	अधीनस्थ कार्यपालक मजिस्ट्रेट से – ADM, SDM	(a) स्वविवेक (b) पीड़ित पक्षकार	–	आवश्यक

Rough

निर्णय (Judgement) [Sections 353 – 365]

I. परिचय :

जब विचारण न्यायालय के द्वारा मामले का विनिश्चय किया जाता है तो निर्णय न्यायालय के पीठासीन अधिकारी द्वारा खुले न्यायालय (धारा 327) में विचारण समाप्त होने के तुरन्त बाद या किसी अन्य दिन किया जा सकता है। यदि निर्णय किसी अन्य दिन दिया जाता है तो पक्षकारों एवं उनके अधिवक्ताओं को सूचना दी जाती है। सामान्य नियम यह है कि निर्णय पक्षकारों अभियुक्त और अधिवक्ताओं की उपस्थिति में सुनाया जाना चाहिए। जब पक्षकारों को सूचित कर दिया गया हो परन्तु उसके उपरान्त भी वे अनुपस्थित रहते हैं तो उनकी अनुपस्थिति में भी निर्णय सुनाया जा सकता है। ऐसे निर्णय की वैधता पर इस आधार पर आक्षेप नहीं दिया जा सकता कि निर्णय उनकी अनुपस्थिति में सुनाया गया है।

II. निर्णय कैसे दिया जाता है? (धारा 353):

निर्णय न्यायाधीश द्वारा अपने हाथ से लिखकर तैयार किया जाता है। यदि निर्णय आशुलिपिक से लिखवाया गया है तो टंकित प्रतिलिपि के प्रत्येक पृष्ठ पर न्यायाधीश द्वारा हस्ताक्षर किये जाने चाहिए। धारा 353 विहित करती है कि निर्णय निम्न प्रकार से दिया जा सकता है :-

1. निर्णय की एक प्रतिलिपि अभियुक्त को उपलब्ध करवाकर तथा निर्णय का निर्णायक भाग न्यायालय में पढ़कर।
2. संपूर्ण निर्णय पढ़कर सुनाया जाकर।
3. अभियुक्त या उसके अधिवक्ता की भाषा में अनुवाद करके उसके सार को समझाकर।
4. निर्णय की प्रमाणित प्रतिलिपि अभियुक्त को निःशुल्क उपलब्ध करवायी जायेगी।
5. यदि अभियुक्त अभिरक्षा में हो तो निर्णय सुनाये जाने के लिए उसे न्यायालय में लाया जायेगा।
6. यदि अभियुक्त को पहले ही हाजिरी से मुक्त कर दिया गया है (धारा 205) तो ऐसी दशा में यह आवश्यक नहीं है कि जिस दिन निर्णय सुनाया जाये अभियुक्त न्यायालय के सामने उपस्थित हो।

III. निर्णय की अन्तर्वस्तु (धारा 354):

1. निर्णय न्यायालय की भाषा में दिया जायेगा। (धारा 272)
2. प्रत्येक निर्णय के विनिश्चय के बिन्दु और ऐसे निर्णय के कारण अभिलिखित किये जायेंगे।
3. निर्णय में विहित किया जायेगा कि किस विधि के उपबन्धों के अन्तर्गत अभियुक्त को सिद्धदोष किया गया है और इसमें यह विहित किया जायेगा कि दण्डादेश क्या है?
4. यदि दोषमुक्ति का निर्णय है तो दोषमुक्ति के आधारों को लिखा जायेगा और यदि अभियुक्त अभिरक्षा में है तो मजिस्ट्रेट उसे तुरन्त रिहा करने का आदेश देगा।
5. यदि अभियुक्त को अंशतः एक धारा और अंशतः दूसरी धारा के अन्तर्गत अपराधी पाया जाता है तो ऐसी दशा में न्यायालय के द्वारा अनुकल्पतः निर्णय दिया जा सकता है। (व्यवहारिक रूप से ऐसा उचित नहीं माना जाता है)
6. यदि अभियुक्त को किसी ऐसे अपराध के लिए दण्डित किया जाता है जो मृत्युदण्ड या आजीवन कारावास से दण्डनीय हो तो ऐसे दण्डादेश के किये जाने के कारणों का उल्लेख किया जाना चाहिए। जब मृत्युदण्ड दिया जाये तो ऐसी दशा में दण्ड दिये जाने के विशेष कारणों को अभिलिखित किया जायेगा।
7. यदि अभियुक्त को उस अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया है जो एक वर्ष या उससे अधिक कारावास से दण्डनीय है और मजिस्ट्रेट उसे 3 माह से कम का दण्ड देता है तो ऐसा किये जाने के कारणों को अभिलिखित किया जाना चाहिए।
8. यदि अभियुक्त को संक्षिप्त विचारण की प्रक्रिया द्वारा विचारित किया गया है तो 3 माह से कम सजा दिये जाने पर भी कारण को अभिलिखित किया जाना आवश्यक नहीं है। यदि संक्षिप्त विचारण में अभियुक्त को मात्र न्यायालय के उठने के समय तक के लिए कारावास दिया गया हो तो कारण अभिलिखित किया जाना आवश्यक है।
9. यदि अभियुक्त को मृत्युदण्डादेश दिया गया हो तो इस बात का उल्लेख किया जाना चाहिये कि अभियुक्त की गर्दन में फांसी लगाकर तब तक लटकाया जाये जब तक उसकी मृत्यु न हो जाये।
10. धारा 117, धारा 125, 138, 145, 147 के प्रत्येक अन्तिम आदेश में अवधारणा के प्रश्न वह उसके विनिश्चय के कारण अभिलिखित होंगे।

Note (नोट) - धारा 117 (प्रतिभूति देने का आदेश)
धारा 125 - भरण पोषण
धारा 138 - लोक उपताप के मामले में प्रक्रिया
धारा 145 - भूमि या जल सम्बन्धी विवादों से संबंधित मामले
धारा 147 - जल या भूमि के उपयोग के अधिकार संबंधी विवाद

II. एक पक्ष के दृष्टिकोण को स्वीकार तथा दूसरे पक्ष के दृष्टिकोण को अस्वीकार करने के कारणों को स्पष्ट रूप से उल्लेखित किया जाना चाहिए।

राजेन्द्र बनाम उ.प्र. राज्य (1969) SC - निर्णय - यह निश्चय करने के लिए कि मृत्युदण्ड या आजीवन कारावास में से कौन सा दण्ड दिया जाये। अपराध की गंभीरता, पूर्व नियोजित, षड्यंत्र, अभियुक्त का आचरण, जेल में सुधरने की संभावना, पारिवारिक स्थिति, अभ्यस्त अपराधी या प्रथम अपराधी आदि तथ्यों को ध्यान में रखना चाहिए। संपत्ति के लिए पूरे परिवार की हत्या, भाड़े के हत्यारों से हत्या करवाना, फिरौती न मिलने पर हत्या, बलात्कार के साथ हत्या आदि मामलों में मृत्युदण्ड दिया जाना चाहिए।

बच्चन सिंह बनाम राज्य AIR 1980 SC - निर्णय - मृत्युदण्ड विरलतम से विरल (rarest of the rare) मामलों में दिया जाना चाहिए।

केहर सिंह बनाम राज्य 1988 SC - सुरक्षा गार्डों द्वारा हत्या किये जाने पर उन्हें मृत्युदण्ड दिया जाना उचित है क्योंकि उनका कार्य रक्षा करना या न कि हत्या करना।

IV. प्रतिकर (धारा 357, 358, 359):

अभियुक्त को दोषसिद्ध करते समय न्यायालय अनेक मामलों में अभियुक्त पर सजा के साथ-साथ जुर्माना भी आरोपित कर सकता है। इस जुर्माने या प्रतिकर की राशि का उपयोग निम्न कार्यों के लिए किया जा सकता है -

1. अभियोजन पक्ष के व्यय की प्रतिपूर्ति करने के लिए।
2. पीड़ित पक्षकार को प्रतिकर देने के लिए।
3. मृतक के आश्रितों की क्षतिपूर्ति करने के लिए।
4. सद्भावनापूर्वक चुरायी हुयी संपत्ति खरीदने वाले क्रेता को क्षतिपूर्ति प्रदान करने के लिए।

राजस्थान में यदि अपराधी सामान्य वर्ग का व्यक्ति हो तथा पीड़ित पक्षकार SC या ST वर्ग का हो तो अपराधी से पीड़ित पक्षकार को क्षतिपूर्ति दिलवायी जानी आवश्यक है।

यदि किसी व्यक्ति को अनुचित ढंग से बिना किसी युक्तियुक्त कारण के गिरफ्तार करवा दिया गया हो तो उसे 100 रुपये तक क्षतिपूर्ति दिलवायी जा सकती है तथा क्षतिपूर्ति अदा न करने पर 30 दिन तक का साधारण कारावास आरोपित किया जा सकता है। (धारा 358)

असंज्ञेय मामलों में परिवादी को सफल होने पर उचित प्रतिकर अभियुक्त से दिलवाया जा सकता है यदि ऐसे आदेशित प्रतिकर का भुगतान न किया जाये तो अभियुक्त को 30 दिन के साधारण कारावास से दण्डित किया जा सकता है। (धारा 359)

V. परिवीक्षा (Probation) [Section 360 (1)]:

अभियुक्त को दोषसिद्ध किये जाने के उपरान्त उस विधि के अनुसार दण्डित किया जाना चाहिए। अभियुक्त की आयु चरित्र सुधरने की संभावना शारीरिक एवं मानसिक स्थिति अपराध कारित किये जाने की परिस्थितियां आदि को ध्यान में रखकर अभियुक्त को दोषसिद्धि के उपरान्त भी परिवीक्षा या भर्त्सना पर छोड़ा जा सकता है। इसके बारे में प्रावधान Section 360 Cr.P.C. एवं अपराधी परिवीक्षा अधिनियम 1958 में किया गया है।

परिवीक्षा की अधिकतम अवधि तीन वर्ष की हो सकती है। इस दौरान उसे अपना अच्छा चरित्र प्रदर्शित करना होता है तथा बन्धपत्र की निष्पादित करवाये जा सकते हैं। ये बन्धपत्र प्रतिभूओं सहित या रहित हो सकते हैं। बन्धपत्र के नियमों की अवहेलना करने पर उसे पुनः सजा भुगतने के लिए बुलाया जा सकता है। इसकी प्रमुख शर्तें इस प्रकार हैं -

1. अभियुक्त को अपराध से पूर्व किसी अन्य अपराध के लिए दोषसिद्ध न किया गया हो।
2. पुरुष अभियुक्त 21 वर्ष से कम आयु का होना चाहिए या महिला अभियुक्त किसी भी आयु की हो सकती है। इन्हें मृत्युदण्ड या आजीवन कारावास से दण्डनीय अपराध में दोषसिद्ध न किया गया हो।
3. यदि अभियुक्त की आयु 21 वर्ष या अधिक हो तो से जुर्माने या सात वर्ष तक के कारावास से दण्डनीय अपराध से दण्डित किया गया हो।

सजा के बिन्दु पर सुना जाना
Section 235 (2) Cr.P.C.

हस्ताक्षर
जिला एवं सत्र न्यायाधीश
इलाहाबाद (उ.प्र.)

निर्णय को खुले न्यायालय में सुना जाना (धारा 327)

हस्ताक्षर
जिला एवं सत्र न्यायाधीश
इलाहाबाद उ.प्र.

प्रश्न - श्रीमती म का विवाह अ के साथ अप्रैल 1996 में संपन्न हुआ। श्रीमती म को उसका पति अ तथा सास ब विवाह के समय काफी दहेज न लाने के कारण प्रताड़ित कर रहे थे। श्रीमती म को कई बार उसके पिता द्वारा धन तथा कीमती वस्तुएं भेजी गई परन्तु अ और ब सन्तुष्ट नहीं थे। श्रीमती म को कई दिनों तक खाना नहीं दिया गया। दिनांक 28.01.1999 को अ तथा ब ने श्रीमती म को मारने की योजना बनाई। म जब चाय बना रही थी तो उसकी सास ब ने उसके ऊपर मिट्टी का तेल फेंका तथा अ ने जलती हुई दिया सलाई फेंक दी और रसोई घर का किवाड़ बन्द कर दिया। उसके पश्चात् अ और ब चिल्लाने लगे कि म जलने से मर गई है। कुछ पड़ोसियों ने घटना की सूचना पुलिस को दी। पुलिस ने लाश को पोस्टमार्टम के लिए भेज दिया और अन्वेषण करने के पश्चात् धारा 304 ब के अन्तर्गत दहेज हत्या के अपराध के लिए अ और ब के विरुद्ध आरोप पत्र प्रेषित किया।

उपर्युक्त तथ्यों के आलोक में आरोप तैयार कीजिए तथा दोषसिद्धि का निर्णय ले। ***[UPPCS (J), 1999]***

न्यायालय जिला एवं सत्र न्यायाधीश आगरा (उत्तर प्रदेश)

प्रकरण सं. 129/1999
धारा - S/302/304 – B/34 IPC
उत्तर प्रदेश राज्य ..... अभियोजक

बनाम

(1) अ S/o श्री स जाति उम्र 30
145, गांधी मार्ग, आगरा (उ.प्र.)
(2) ब W/o स जाति उम्र 49
145 गांधी मार्ग, आगरा (उ.प्र.) ..... अभियुक्त गण

आरोप

1. मैं आशुतोष प्रताप सिंह जिला एवं सत्र न्यायाधीश आगरा (उ.प्र.) आप अ, S/o श्री स और ब W/o श्री स पर निम्न आरोप लगाता हूं :-
2. (क) आप अ ने सहअभियुक्त ब जो कि आपकी सगी मां है के साथ मिलकर अपनी विवाहिता पत्नी म को दहेज हेतु प्रताड़ित किया तथा दिनांक 28.1.1999 को प्रातः 9 बजे एक योजनाबद्ध तरीके से म पर मिट्टी का तेल छिड़क कर आग लगा दी जिससे उसकी मृत्यु हो गयी। इस प्रकार आपने ऐसा अपराध किया जो IPC 1860 की धारा 302/34 के अन्तर्गत दण्डनीय है और इस न्यायाल के संज्ञान में है।

(ख) आप अ सहअभियुक्त ब के साथ मिलकर अपनी विवाहिता पत्नी म को दहेज के लिए तंग परेशान करते रहे हैं। दिनांक 28.1.1999 को आपकी पत्नी के जल जाने से संदेहास्पद परिस्थितियों में मृत्यु हो गयी। म के साथ आपके विवाह के लगभग 3 वर्ष के उपरान्त कारित यह कार्य IPC 1860 की धारा 304 B के अन्तर्गत दण्डनीय अपराध है तथा इस न्यायालय के संज्ञान में है।

3. और मैं इसके साथ आदेश देता हूं कि आपका इस न्यायालय द्वारा उक्त आरोपों पर विचारण किया जाये।

दिनांक - 29.3.1999 हस्ताक्षर

मुहर जिला एवं सत्र न्यायाधीश
आगरा (उ.प्र.)

न्यायालय जिला एवं सत्र न्यायाधीश आगरा (उ.प्र.)

प्रकरण सं. - 129/1999

FIR No. – 154/1999 P.S. बिजलीघर

धारा Section 302/304 B/34 IPC

पीठासीन न्यायाधीश - आशुतोष प्रताप सिंह

उत्तर प्रदेश राज्य अभियोजक

बनाम

(1) अ S/o श्री स जाति उम्र 30 वर्ष अभियुक्त गण

(2) ब W/o श्री स जाति उम्र 49 वर्ष

निवासी गण, 145, गांधी मार्ग, आगरा (उ.प्र.)

उपस्थित अधिवक्ता

सरकार की ओर से - श्री बी. एम. सिंह (लोक अभियोजक)

अभियुक्त की ओर से - श्री अरूप सिन्हा

निर्णय दिनांक - 15.6.1999

1. दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 209 के अन्तर्गत यह मामला न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम वर्ग सं. 5 द्वारा इस न्यायालय को सुपुर्द किया गया। विद्वान सहायक अभियोजक श्री वी. एम. सिंह ने अभियुक्त गण अ और ब के विरुद्ध IPC 1860 की धारा 302 के अन्तर्गत अपराध कारित करने का आक्षेप लगाते हुए कहा कि श्रीमती म का विवाह अ के साथ 15 अप्रैल 1996 को हुआ था। उसे अभियुक्त गण दहेज के लिए तंग परेशान करते रहे तथा अन्त में 28.1.1999 को प्रातः 9 बजे मिट्टी का तेल छिड़क कर उसे आग लगाकर उसकी मृत्यु कारित कर दी। अभियुक्त गणों ने आरोप से इन्कार किया तथा साक्ष्यों को मनगढ़ंत बताया।
2. न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम वर्ग आगरा ने मामला मुझे सुपुर्द करने से पूर्व अभियुक्त गणों को Cr.P.C. की धारा 207 के अन्तर्गत पुलिस रिपोर्ट, FIR धारा 161 के अन्तर्गत दर्ज बयानों, आदि की प्रतियां अभियुक्त गणों को उपलब्ध करवा दी थी जिसकी पुष्टि अभियुक्त गणों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने की।
3. दोनों पक्षों को सुनने के उपरान्त IPC 1860 की धारा 302/304 ब/34 IPC के अन्तर्गत वैकल्पिक आरोप विरचित किया गया तथा अभियुक्त गणों को समझाया गया। अभियुक्त गणों ने आरोप से इन्कार किया गया अन्वीक्षा चाही। [Section 221 Cr.P.C.]
4. दोनों पक्षों को सुनने तथा पत्रावली का अवलोकन करने के उपरांत निम्न विधायक बनाये गये -
   (क) क्या श्रीमती म की मृत्यु असामान्य परिस्थितियों में हुयी थी? (सबूत का भार अभियोजन पर)
   (ख) क्या मृतक म की मृत्यु उसके अ के साथ विवाह के 7 वर्ष के अन्दर हुयी थी?
   (ग) क्या मृत्यु के ठीक पूर्व अ और ब द्वारा श्रीमती म को दहेज के लिए तंग परेशान किया जा रहा था?
   (घ) क्या अभियुक्त गणों के विरुद्ध IEA 1872 की धारा 113 B के अन्तर्गत दहेज मृत्यु की उपधारणा की जा सकती है?
   (ड़) क्या अभियोजन पक्ष अभियुक्तों द्वारा मृतक की हत्या किया जाना संदेह से परे साबित कर पाया है?
   (च) क्या अभियोजन पक्ष अभियुक्त गणों द्वारा दहेज मृत्यु कारित किया जाना सन्देह से परे साबित कर पाया है?

अभियोजन पक्ष ने पांच गवाहों को न्यायालय में प्रस्तुत किया :-

(i) *PW–1 राम प्रसाद यादव, पुलिस इन्सपेक्टर :*

उस: ने बताया कि सूचना मिलने पर वह मौका-ए-वारदात पर पहुंचा तो उसने श्रीमती म की लाश को रसोईघर में पड़ा हुआ पाया। लाश को पोस्टमार्टम के लिए सिविल अस्पताल भेजा गया। रसोईघर के बाहर मिट्टी के तेल का एक जाली गैलन तथा माचिस की एक डिबिया बरामद की। उसने धारा 161 के अन्तर्गत आस-पास के लोगों के बयान दर्ज किये। अभियुक्त ब को गिरफ्तार कर लिया गया तथा अभियुक्त अ की तलाश की गयी तथा तीन दिन के उपरान्त उसे दिल्ली से गिरफ्तार कर लिया गया।

(ii) *PW 2 नरेन्द्र कुमार - मृतका का पिता :*

ने बताया कि उसकी पुत्री का विवाह 15 अप्रैल 1996 को हुआ। वह पहले भी अपने ससुराल पक्ष में प्रताड़ित की गई तथा अब उन्होंने जला दिया तथा यह आग उसके शरीर के पिछले हिस्से से प्रारंभ हुयी थी। उसने लाश से मिट्टी के तेल के कण की उपस्थिति भी स्वीकार की।

(iv) *PW 4 डा. आर. के. त्रिपाठी - अंगुलि चिन्ह विशेषज्ञ :*

ने न्यायालय को बताया कि घटनास्थल पर बरामद मिट्टी के तेल के गैलन तथा माचिस की डिबिया पर अभियुक्त ब की अंगुलियों के निशान पाये गये।

(v) *PW 5 राम सिंह जो 148, गांधी मार्ग पर रहता है :*

ने बताया कि 28.1.99 को श्रीमती म के चिल्लाने की आवाजे सुनकर वह अभियुक्त गणों के घर गया। उसने देखा कि श्रीमती म जल रही थी। उसने पुलिस में FIR दर्ज करवाया भी स्वीकार किया। उसने यह भी बताया कि 27.01.1999 को अभियुक्त अ बाजार से 5 लि. मिट्टी का तेल लेकर आया था।

अभियोजन पक्ष ने श्रीमती म के विवाह के कार्ड की एक प्रति भी पेश की जिस पर विवाह की तिथि 15 अप्रैल 1996 अंकित है। (प्रदर्श पी - 1)

5. Cr.P.C. 1973 की धारा 313 के अन्तर्गत अभियुक्त गणों को साक्षियों के बयानों को समझाया गया तथा उन्हें स्पष्टीकरण देने के लिए कहा गया। उनके द्वारा दिये गये स्पष्टीकरण को अभिलिखित किया गया।

7. **अभियुक्त गणों की ओर से बचाव में निम्न गवाह प्रस्तुत किये गये :-**

(क) **DW 1 अनिल कुमार** - ने बताया कि वह श्री अ व श्रीमती ब को वर्षों से जानता है। दोनों ही अच्छे चरित्र के व्यक्ति हैं। वे धार्मिक प्रवृत्ति के हैं तथा वह श्रीमती म के साथ बहुत अच्छा व्यवहार करते थे। उसने यह भी बताया कि श्री अ ने म से विवाह बिना दहेज लिए किया था। (सुसंगत साक्ष्य Section 53 IEA 1872)

(ख) **DW 2 अमित कुमार** - ने बताया कि वह दिल्ली में डा. मुखर्जी नगर में रहता है। उसने यह बयान दिया कि अ 28.1.1999 को प्रात: लगभग 7 बजे दिल्ली विश्वविद्यालय के पास माल रोड पर उसके साथ प्रात: कालीन भ्रमण कर रहा था। उसने यह भी बताया कि अ के मित्र प ने उसे बताया था कि अ आज उसके साथ ही रहेगा।

(ग) **DW 3 अभियुक्त अ S/o श्री स** - ने स्वयं को गवाह के रूप में प्रस्तुत किया (315 Cr.P.C.) तथा उसने अपने आप को पूर्णत: निर्दोष पाया तथा कहा कि पुलिस उसे झूठा फंसाने का प्रयास कर रही है।

8. **अन्तिम बहस के दौरान अभियोजन पक्ष तथा बचाव पक्ष ने अपने-अपने पक्ष में तर्क प्रस्तुत किये।**

अभियोजन पक्ष ने कहा कि IEA 1872 की धारा 193 ब के अन्तर्गत अभियुक्तों के विरुद्ध दहेज मृत्यु कारित करने की उपधारणा उत्पन्न हो गयी है तथा अभियुक्तों द्वारा मृतका की हत्या किया जाना भी सन्देह से परे साबित हो गया है। अत: अभियुक्तों को सख्त सजा दी जानी चाहिए। बचाव पक्ष DW 1 के बयान का सहारा लेते हुए कहा कि अभियुक्त गण अच्छे चरित्र के व्यक्ति हैं तथा उनके पास संपत्ति की कोई कमी नहीं। अत: वे दहेज हत्या जैसा जघन्य अपराध नहीं कर सकते। बचाव पक्ष ने DW 2 के बयान के हवाले से कहा कि अभियुक्त 28.1.1999 का दिल्ली में था। अत: वह आगरा में उस दिन अपराध नहीं कर सकता (Section 11 IEA)। बचाव पक्ष ने अभियुक्तों को सन्देह का लाभ देने का अनुरोध भी किया।

9. विवाद्यक 1 :

प्रथम विवाद्यक यह था कि क्या श्रीमती म की मृत्यु असामान्य परिस्थितियों में हुयी थी?

PW 1 राम प्रकाश यादव, PW 3 डा. अनिता शर्मा तथा PW 5 राम सिंह के बयानों से स्पष्ट है कि मृतका म की मृत्यु असामान्य परिस्थितियों में जल जाने के कारण हुयी थी। अत: इस विवाद्यक का निर्णय अभियोजन पक्ष के पक्ष में तथा अभियुक्तों के विपक्ष में किया जाता है।

10. विवाद्यक 2 :

दूसरा विवाद्यक यह था कि क्या म की मृत्यु उसने अ के साथ विवाह के 7 वर्ष के अन्दर हुयी थी? PW 2 नरेन्द्र कुमार के बयान तथा प्रदर्श पी 1 में प्रदर्शित विवाह के कार्ड से स्पष्ट है कि श्रीमती म का विवाह 15.04.1996 को हुआ था तथा उसकी मृत्यु जल जाने से 28.1.1999 को हुयी। बचाव पक्ष ने इस संबंध में कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया। अत: इस विवाद्यक का निर्णय भी अभियोजन के पक्ष में तथा अभियुक्तों के विपक्ष में किया जाता है।

11. विवाद्यक 3 :

तीसरा विवाद्यक यह था कि क्या मृत्यु से ठीक पूर्व अ और ब द्वारा श्रीमती म को दहेज के लिए तंग परेशान किया जा रहा था। PW 2 नरेन्द्र कुमार ने बयान दिया था कि उसकी पुत्री को दहेज के लिए तंग परेशान किया जा रहा था जबकि DW 1 अनिल कुमार ने बताया था कि अभियुक्त गण अच्छे चरित्र के व्यक्ति हैं तथा वे संपन्न व्यक्ति होने के कारण ऐसा नहीं कर सकते। बचाव पक्ष में यह भी तर्क प्रस्तुत किया कि मृतका के पिता PW 2 के बयानों को स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि वह हितबद्ध साक्षी है।

कार्तिक मल्हार बनाम बिहार राज्य **1996 SC** में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि किसी व्यक्ति के बयान को मात्र इस आधार पर अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि वह मृतक का नजदीकी संबंधी है। यदि अन्य साक्ष्य से उसके बयान की पुष्टि होती है तो उसके बयान को स्वीकार किया जाना चाहिए।

DW 1 द्वारा दिया गया साक्ष्य मात्र कल्पना पर आधारित है जबकि PW 2 द्वारा दिया गया साक्ष्य तथ्य पर आधारित है। IEA 1872 की धारा 60 के अनुसार मौखिक साक्ष्य प्रत्यक्ष होना चाहिए। जबकि DW 1 द्वारा दिया गया साक्ष्य अनुश्रुत साक्ष्य है। अत: मैं उसे अस्वीकार करते हुये इस विवाद्यक का निर्णय भी अभियोजन के पक्ष में तथा अभियुक्त गणों के विरुद्ध करता हूं।

12. विवाद्यक 4 :

चतुर्थ विवाद्यक यह था कि क्या अभियुक्तों के विरुद्ध IEA 1872 की धारा 113 ब के अन्तर्गत दहेज मृत्यु की उपधारणा की जा सकती है? उक्त उपधारणा करने के लिए निम्न बातों का सिद्ध किया जाना आवश्यक है :-

1. अभियुक्त का विचारण 304 B IPC के अन्तर्गत किया जा रहा हो।
2. मृतका को उसके पति या अन्य संबंधियों द्वारा तंग परेशान किया जा रहा हो।
3. यह क्रूरता दहेज की मांग के संबंध में की जाती रही हो।
4. यह क्रूरता या अत्याचार उसकी मृत्यु से ठीक पूर्व किया जा रहा हो।
5. मृतका की मृत्यु उसके विवाह के सात वर्ष के अन्दर हुयी हो।
6. मृतका की मृत्यु असामान्य परिस्थितियों में हुयी हो।

अभियोजन पक्ष ने पर्याप्त साक्ष्य प्रस्तुत करके उक्त आवश्यक तत्वों को सिद्ध कर दिया है। अत: अभियुक्तों के विरुद्ध दहेज मृत्यु कारित करने की उपधारणा की जाती है। इस shall presume उपधारणा को खण्डित करने का भार अभियुक्तों पर है।

13. विवाद्यक 5 :

पांचवा विवाद्यक यह था कि क्या अभियोजन पक्ष अभियुक्तों के द्वारा मृतका की हत्या कारित किया जाना सन्देह से परे साबित कर पाया है?

PW 1 राम प्रकाश यादव द्वारा मृतका की लाश को अधजली अवस्था में रसोई घर में पाया जाना। PW 2 नरेन्द्र कुमार का बयान कि उसकी पुत्री को दहेज के लिए तंग परेशान किया जा रहा था। PW 3 डा. अनीता शर्मा का बयान कि आग मृतका के पिछले भाग से आरंभ हुयी तथा मिट्टी के तेल के कण उसके शरीर पर पाया जाना। PW 4 डा. आर. के. त्रिपाठी का बयान कि घटनास्थल से बरामद तेल के गैलन तथा माचिस की डिबिया पर ब की अंगुलियों के निशान थे। PW 5 राम सिंह का बयान कि 27.1.1999 को अभियुक्त मिट्टी का पांच ली. तेल लेकर आया था। आदि पारिस्थिति जन्य साक्ष्य (circumstantial evidence) अभियोजन पक्ष के तर्क को पुष्ट करते हैं।

बचाव पक्ष द्वारा प्रस्तुत DW 2 अमित कुमार का बयान कि अभियुक्त अ 28.1.1999 को प्रातः 7.00 बजे दिल्ली में था। IEA 1872 की धारा 11 के अन्तर्गत सुसंगत है परन्तु उसके बयान का दूसरा भाग कि 'अ के मित्र P ने उसे बताया था कि अ आज उसके साथ नहीं रहेगा'। ग्राह्य नहीं है क्योंकि IEA की धारा 60 के अनुसार मौखिक साक्ष्य प्रत्यक्ष होना चाहिए।

दिल्ली और आगरा के बीच की दूरी लगभग 200 कि.मी. है जबकि हत्या लगभग प्रातः 9 बजे की गयी। अतः अभियुक्त के अन्यत्र होने के अभिवाक (The Plea of alibi) को स्वीकार किया जा सकता है। इस बात की संभावना है कि सामान्य व्यक्ति 2 घंटे में 200 कि.मी. की यात्रा न कर पाये। अतः अभियुक्त को इसका लाभ दिया जाना चाहिए क्योंकि इस संबंध में उसने युक्तियुक्त संदेह उत्पन्न कर दिया है। अतः इस विवाद का निर्णय अभियोजक के विपक्ष में तथा अभियुक्त के पक्ष में किया जाता है।

14. विवाद्यक 6 :

छठा विवाद्यक यह था कि क्या अभियोजन पक्ष अभियुक्तों द्वारा दहेज मृत्यु कारित किया जाना सन्देह से परे साबित कर पाया है?

धारा 113 ब IEA के अन्तर्गत दहेज मृत्यु कारित करने की उपधारणा अभियुक्तों के विरुद्ध उत्पन्न हो चुकी है तथा अभियुक्त इस उपधारणा को खण्डित करने में असफल रहे है। अतः इस विवाद्य का निर्णय अभियोजन पक्ष के पक्ष में तथा अभियुक्तों के विपक्ष में किया जाता है।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि अभियोजन पक्ष अभियुक्तों द्वारा Section 304 B IPC के अन्तर्गत किये गये अपराध संदेह से परे साबित करने में समर्थ रहा है।

आदेश

अभियुक्त अ और ब को IPC की धारा 302/34 के अन्तर्गत सन्देह का लाभ देते हुए दोषमुक्त किया जाता है।

अभियुक्त अ और अभियुक्त ब को IPC 1860 की धारा 304 ब के अन्तर्गत सिद्धदोष घोषित किया जाता है। दोनों अभियुक्तों के जमानत मुचलके रद्द करते हुए पुलिस को आदेश दिया जाता है कि अभियुक्तों को गिरफ्तार कर ले। इस प्रकरण में प्रयुक्त की गयी संपत्ति को उनके वास्तविक मालिक को वापस कर दिया जाये [Section 452 Cr.P.C.]। अभियुक्तों को निर्णय की प्रति निःशुल्क [Section 363 Cr.P.C.] उपलब्ध करवायी जाये।

हस्ताक्षर
जिला एवं सत्र न्यायाधीश
आगरा (उ.प्र.)

सजा के बिन्दु पर सुनवाई [Section 235 (2)]

दोनों पक्षों को सजा के बिन्दु पर सुना गया। अभियोजन पक्ष ने अभियुक्तों को कठोर से कठोर सजा देने का अनुरोध किया। बचाव पक्ष का कहना था कि अभियुक्त ब की आयु 50 वर्ष है तथा वह एक विधवा महिला है। अतः उसे कम से कम सजा दी जानी चाहिए। अभियुक्त अ एक अच्छे चरित्र का व्यक्ति रहा है। अतः उसे भी कम से कम सजा दी जाये।

मामले की गंभीरता वाद के तथ्यों तथा समाज में दहेज हत्या के बढ़ते मामलों को ध्यान में रखते हुए मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि अभियुक्तों को किसी प्रकार की कोई रियायत न दी जाये। अतः अभियुक्त अ को Section 304 B IPC के अन्तर्गत उम्र कैद की सजा तथा 5000 रुपये जुर्माना किया जाता है। जुर्माना अदा न करने की अवस्था में 6 माह का कठोर कारावास और दिया जाये।

अभियुक्त B की वृद्धावस्था को देखते हुए उसे 7 वर्ष के साधारण कारावास तथा तीन हजार रुपये जुर्माना किया जाता है। जुर्माना अदा न करने की अवस्था में तीन माह का साधारण कारावास और दिया जाये। Cr.P.C. की धारा 428 में वर्णित नियमानुसार अन्वेषण जांच और विचारण के दौरान भुगते गये कारावास को दण्डित कारावास में से मुजरा दिय जाये।

हस्ताक्षर
जिला एवं सत्र न्यायाधीश
आगरा (उ.प्र.)

V. निष्कर्ष :

भरणपोषण से संबंधित प्रावधान धर्म या जाति, संप्रदाय आदि का विभेद न करते हुए सभी समुदायों के संबंध में लागू होते हैं। भरणपोषण से संबंधित कार्यवाही सामान्यतः दाण्डिक प्रशासन से संबंधित नहीं है। यह एक सामाजिक व्यवस्था का प्रश्न ही निःसहाय पत्नी, अवयस्क बच्चों तथा वृद्ध माता-पिता को शीघ्रातिशीघ्र सहायता उपलब्ध करवाने के लिए इसका प्रावधान किया गया है। यदि उक्त वर्णित असहाय व्यक्तियों को समय पर सहायता उपलब्ध न करवाई जाये तो उनमें अपराध करने की प्रवृत्ति बढ़ सकती है। धारा 125 Cr.P.C. मुख्यतः दो सिद्धान्तों पर आधारित हैं - (1) पति को अपनी पत्नी का भरणपोषण करना चाहिए, (2) पत्नी को पतिव्रता होना चाहिए और उसे बिना किसी युक्तियुक्त कारण के उसका साथ नहीं छोड़ना चाहिए। अतः यह उपबन्ध सामाजिक व्यवस्था बनाये रखने के लिए है।

प्रश्न 2 - Under what circumstances and by whom maintenance may be claimed under the provisions of Cr.P.C.? ***[Haryana C.S. (J) – 1995, HPJS – 1989, RJS – 1992]***

उत्तर - (धारा 125 - भरणपोषण का आदेश) = कृपया प्रश्न संख्या 1 का उत्तर देखें।

प्रश्न 3 - क्या एक तलाकशुदा स्त्री भरणपोषण की मांग कर सकती है? दण्ड प्रक्रिया संहिता में भरणपोषण के लिए अधिक से अधिक क्या रकम दी जा सकती है? ***[RJS 1994]***

उत्तर - एक तलाकशुदा स्त्री जिसने पुनर्विवाह न किया हो, धारा 125 Cr.P.C. के अन्तर्गत भरणपोषण की मांग कर सकती है। भरणपोषण की अधिकतम राशि पहले 500/- रुपये प्रति माह थी। अब इस अधिकतम सीमा को हटा दिया गया है। ***[मुसम्मात्तर रोहरा खातून बनाम मो. इब्राहिम, AIR 1986 SC; बाई ताहिरा बनाम अली हुसैन फिसाली, AIR 1979 SC; शाहबानो बेगम (AIR 1985 SC) का मामला]***

Question 4. The wife filed an application under section 125 claiming maintenance for herself as also minor daughter alleging that at the time of her marriage with the respondent sometime in 1981 the fact that the respondent was already married and his spouse was living, was not known, and that after the discovery of the previous marriage of the respondent the relationship between the parties gradually became strained and ultimately the respondent started neglecting the applicant and the minor daughter and refused to maintain them. The respondent denied his liability to pay any maintenance, and pleaded that the applicant was fully aware about his first marriage and the fact that his first wife was living at that time. Decide. ***[DJS 1990]***

Ans. The second marriage is void because it is declared void under section 17 of Hindu Marriage Act, 1955. The wife is not entitled to maintenance, but the minor daughter is entitled because Section 125 Cr.P.C. covers both legitimate and illegitimate children. A Muslim wife is also entitled to claim maintenance.

Question 5. Whether a person can be ordered to pay maintenance to an adult son who is physically disabled and unable to maintain himself? ***[RJS 1991]***

Ans. Even after attaining majority, a legitimate or illegitimate child (not being a married daughter) is entitled to claim maintenance if by reason of any physical or mental abnormality or injury it is unable to maintain itself.

प्रश्न 6 - A और B का कलकत्ता में विवाह हुआ। वे अन्तिम बार एक साथ दिल्ली में रहे। A का स्थानान्तरण जयपुर हो गया और वह B को उसके भाई के पास दिल्ली छोड़कर आ गया। A ने B की उपेक्षा की व उसका भरणपोषण करने से इंकार कर दिया। बताइये किन-किन स्थानों पर दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के अन्तर्गत भरणपोषण की राशि के लिए प्रार्थनापत्र दिये जा सकते हैं? ***[RJS 1989]***

उत्तर - दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 126 के अनुसार ऐसा प्रार्थनापत्र निम्नांकित स्थानों पर दिया जा सकता है :-

1. जहां A वर्तमान समय में है अर्थात् जयपुर में।
2. जहां B इस समय निवास करती है अर्थात् दिल्ली में।
3. जहां A ने अन्तिम बार B के साथ निवास किया था अर्थात् दिल्ली में।
4. जहां A वर्तमान समय में निवास कर रहा है अर्थात् जयपुर में।

प्रश्न 7 - पिता ने इस आधार पर कि वह अपना भरणपोषण करने में असमर्थ है, पहली शादी से उत्पन्न पुत्री से भरणपोषण की मांग की। वह अपनी दूसरी पत्नी के साथ रहता था जिससे उसने लगभग 30

वर्ष पूर्व तब विवाह किया था जब पहली पत्नी की मृत्यु हो गयी थी। पुत्री ने प्राथमिक रूप से यह आपत्ति की कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 में यह अपेक्षित नहीं है कि पुत्रियां अपने माता-पिता का भरणपोषण करें। मजिस्ट्रेट ने आपत्तियां रद्द कर दीं। क्या उसका आदेश सही है? कारण बताइये। *[RJS 1989]*

उत्तर - यह सही है कि धारा 125 में पुत्रियों से भरणपोषण पाने के बारे में कोई स्पष्ट प्रावधान नहीं है, लेकिन शब्द 'व्यक्ति' में 'माता-पिता' के संदर्भ में पुत्रियां भी सम्मिलित हो जाती हैं। फिर माता-पिता की सेवा करने के सामाजिक कर्तव्य को मूर्त रूप प्रदान करने के उद्देश्य से *डा. श्रीमती विजय मनोहर अरबट बनाम काशीराव राजाराम सवाई (AIR 1987 SC)* के बाद में पुत्रियों को भी माता-पिता का भरणपोषण करने के लिए उत्तरदायी ठहराया गया है।

Question No. 8 What is the maximum amount of monthly allowance? Which a Criminal Court can grant? *[RJS 1992, 1994]*

Ans. Under Section 125 (1), the Magistrate was required to award maintenance at an appropriate monthly rate, not exceeding Rs. 500/- in the whole. However, vide Amendment Act No. 50 of 2001, no maximum limit for maintenance amount has been fixed. The Magistrate may order such monthly rate as he thinks fit.

Question No. 9 A wife, who is unable to maintain herself, files an application claiming maintenance against her husband under Section 125 Cr.P.C.. She also requests the court to order for interim maintenance pending final disposal of the matter. The husband objects the demand of interim maintenance on the ground that there is no such provision in the said section of the Code. Decide. *[RJS 1999]*

Ans. There was no provision for the payment of interim maintenance under Section 125. However, the S.C. had granted it under its inherent power *[Savitri vs. Govind Singh AIR 1986 SC]*. Therefore, it has been granted by a number of High Courts.

Recently, vide 2001 Amendment, express provision for interim maintenance has been incorporated [Second proviso, Section 125 (1)]. The Magistrate may during the pendency of the proceeding regarding monthly allowance for the maintenance, order such person to make a monthly allowance for the interim maintenance of his wife or such child, father or mother, and the expenses of such proceeding which the Magistrate considers reasonable. An application for the above purpose shall, as far as possible, be disposed of within 60 days of the service of notice of the application to such person.

RJN

पुलिस का निवारण कार्य (धारा 149-153)

प्रश्न 1. पुलिस द्वारा अपराध निवारण कार्यों की शक्तियों का उल्लेख करें। ***[RJS 1992]***

उत्तर दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 149-153 तक में पुलिस की अपराध निवारण शक्तियों का उल्लेख किया गया है। इनके अनुसार -

1. प्रत्येक पुलिस अधिकारी किसी संज्ञेय अपराध किये जाने का निवारण करने के प्रयोजन से हस्तक्षेप कर सकेगा और अपनी पूरी सामर्थ्य से उसे निवारित करेगा। (धारा 149)
2. प्रत्येक पुलिस अधिकारी जिसे किसी संज्ञेय अपराध को किये जाने की परिकल्पना की इत्तिला प्राप्त होती है। ऐसी इत्तिला की संसूचना उस पुलिस अधिकारी को जिसके वह अधीनस्थ है और किसी ऐसे अन्य अधिकारी को देगा, जिसका कर्तव्य किसी ऐसे अपराध के किये जाने का निवारण या संज्ञान करना है। (धारा 150)
3. जहां पुलिस अधिकारी को यह पता चले कि कोई व्यक्ति संज्ञेय अपराध कारित कर सकता है या करने वाला है तो वह ऐसे अपराध को रोकने के लिए उस व्यक्ति को बिना वारण्ट के गिरफ्तार कर सकता है। (धारा 151)
4. जहां पुलिस अधिकारी को किसी लोक संपत्ति को हानि पहुंचाये जाने के प्रयत्न का पता चले, वहां वह ऐसी हानि के निवारण के लिए अपने प्राधिकार से हस्तक्षेप कर सकता है। (धारा 152)
5. जहां पुलिस अधिकारी को यह पता चले कि उसके थाने की स्थानीय सीमाओं के भीतर किसी स्थान में खोटे बाट, माप या तोलने के उपकरण हैं तथा उनका उपयोग किया जा रहा है, वहां वह ऐसे स्थानों की तलाशी वारण्ट के बिना ले सकेगा और ऐसे बाट, माप या तोलने के उपकरणों को अभिगृहीत कर सकेगा। (धारा 153)

RAMU

परिशान्ति एवं सदाचार हेतु प्रतिभूति (धारा 106-124)

S.No.	धारा	अधिकारी	कारण	अधिकतम अवधि
1.	धारा 106	सत्र न्यायाधीश एवं न्यायिक मजिस्ट्रेट I	शान्ति भंग करने वाले अपराधों के लिए दोषसिद्धि पर प्रतिभूति	3 वर्ष
2.	धारा 107	कार्यपालक मजिस्ट्रेट	दोषसिद्धि से पूर्व शान्ति भंग होने की संभावना पर प्रतिभूति	1 वर्ष
3.	धारा 108	कार्यपालक मजिस्ट्रेट	राजद्रोहात्मक बातों को फैलाने वाले व्यक्तियों से सदाचार हेतु प्रतिभूति	1 वर्ष
4.	धारा 109	कार्यपालक मजिस्ट्रेट	संदिग्ध व्यक्तियों से सदाचार हेतु प्रतिभूति	1 वर्ष
5.	धारा 110	कार्यपालक मजिस्ट्रेट	आभ्यासिक अपराधियों से सदाचार हेतु प्रतिभूति	3 वर्ष

प्रतिभूति

शान्ति बनाये रखने के लिए प्रतिभूति (धारा 106-107) — *सदाचार हेतु प्रतिभूति (धारा 108-110)*

दोषसिद्धि पर (धारा 106) — *JM -1 & Sessions Judge (3 years)*

अन्य मामलों में (धारा 107) — *कार्यपालक मजिस्ट्रेट (1 वर्ष)*

(धारा 108) राजद्रोहात्मक बातों को फैलाना — *कार्यपालक मजिस्ट्रेट (1 वर्ष)*

संदिग्ध व्यक्तियों से प्रतिभूति — *कार्यपालक मजिस्ट्रेट (1 वर्ष)*

आभ्यासिक अपराधी — *कार्यपालक मजिस्ट्रेट (3 वर्ष)*

I. परिचय :

अपराध की रोकथाम के लिए दो प्रकार की व्यवस्थायें हैं - दण्डात्मक और निवारणात्मक। दण्डात्मक व्यवस्था में अपराध करने वाले व्यक्तियों का अभियोजन किया जाता है और उन्हें दण्डित किया जाता निवारणात्मक व्यवस्था में अभियुक्त को अपराध करने से पहले ही रोक दिया जाता है। इसमें अग्रिम कार्यवाही की जाती है।

शान्ति एवं सदाचार के लिए जो उपबन्ध हैं वह निवारणात्मक व्यवस्था के रूप में हैं। यह उपबन्ध बताते हैं कि कब, कैसे और किस व्यक्ति को सदाचार बनाये रखने के लिए आबद्ध किया जा सकता है। धारा 106 से 110 में वे आधार दिये गये हैं जिन पर किसी व्यक्ति को बन्धपत्र निष्पादित करने का आदेश दिया जा सकता है और धारा 111 से 124 में प्रक्रियात्मक उपबन्ध किये गये हैं।

II. दोषसिद्धि पर प्रतिभूति (धारा 106) :

जब न्यायालय के द्वारा किसी व्यक्ति को धारा 106 (2) के अन्तर्गत विहित किसी अपराध के लिए सिद्धदोष किया जाता है और न्यायालय की यह राय है कि उससे परिशान्ति कायम रखने के लिए प्रतिभूति लेनी जरूरी है तो न्यायालय उसे बन्धपत्र का निष्पादन करने का आदेश दे सकता है। इसके सबंध में प्रमुख बातें निम्न हैं :-

1. धारा 106 के अन्तर्गत यह शक्ति न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम वर्ग तथा सत्र न्यायालय को दी गयी है, कार्यपालक मजिस्ट्रेट को नहीं।
2. इस धारा के अन्तर्गत सिद्धदोष व्यक्ति के द्वारा निष्पादित किया जाने वाला बन्धपत्र प्रतिभूओं सहित या रहित हो सकता है तथा इसकी अधिकतम अवधि तीन वर्ष की हो सकती है।
3. ऐसे बन्धपत्र का प्रभाव तब प्रारंभ होता है जब अभियुक्त को जल से छोड़ दिया जाता है अथवा कारावास की सजा समाप्त हो जाती है।
4. जब ऐसा सिद्धदोष व्यक्ति अपील करता है और अपीलीय न्यायालय ऐसी दोषसिद्धि को अपास्त कर देता है तो उसके द्वारा निष्पादित किया गया बन्धपत्र निष्प्रभावी हो जाएगा।

धारा 106 (2) में विहित किये गये अपराध इस प्रकार हैं। दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 153 A, 153 B, 143 के अतिरिक्त हमला आपराधिक बल, आपराधिक अभिवास या लोक शान्ति भंग होने से संबंधित अपराध आते हैं। धारा 106 के अन्तर्गत विहित शक्ति का प्रयोग अपीलीय न्यायालय या पुनरीक्षण न्यायालय के द्वारा भी किया जा सकता है।

III. शान्ति भंग की दशा में प्रतिभूति (धारा 107) :

इसके संबंध में प्रावधान निम्न हैं :-

1. धारा 107 के अन्तर्गत शक्ति कार्यपालक मजिस्ट्रेट को प्रदान की गई है।
2. इस धारा का प्रमुख उद्देश्य समाज में होने वाले शान्ति भंग को रोकना है।
3. जब किसी कार्यपालक मजिस्ट्रेट को इत्तिला दी जाती है या जानकारी में आता है कि कोई व्यक्ति शान्ति भंग कर रहा है या लोक प्रशान्ति भंग होने का खतरा हो सकता है तो ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध मजिस्ट्रेट द्वारा कारण बताओ नोटिस जारी किया जा सकता है और जांच के बाद यदि मजिस्ट्रेट की राय है कि उसके विरुद्ध प्रथम दृष्टया मामला बनता है तो शान्ति और सदाचार बनाए रखने के लिए बन्धपत्र निष्पादित करने का आदेश दिया जा सकता है। ऐसा बन्धपत्र प्रतिभूओं सहित या रहित हो सकता है। ऐसे बन्धपत्र की अवधि एक वर्ष की हो सकती है।

IV. राजद्रोहात्मक बातों को फैलाने वाले व्यक्तियों से प्रतिभूति (धारा 108) :

धारा 108 में कार्यपालक मजिस्ट्रेट को शक्ति प्रदान की गई है कि वह राजद्रोहात्मक या अश्लील या मानहानि कारक आदि बातों को रोकने के लिए किसी व्यक्ति को बन्धपत्र निष्पादित करने का आदेश दे सकता है अर्थात् धारा 108 Cr.P.C. के अन्तर्गत Section 124 A, 153 A, 153 B, 295 A, 292 IPC से संबंधित अपराधों को करने की योजना बनाने वाले व्यक्तियों से बन्धपत्र निष्पादित करवाया जा सकता है। जब किसी कार्यपालक मजिस्ट्रेट को इत्तिला दी जाती है कि कोई व्यक्ति उपरोक्त वर्णित धाराओं के अन्तर्गत कोई अपराध कर रहा है तो ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध कारण बताओ नोटिस जारी किया जा सकता है। यदि जांच होने पर कार्यपालक मजिस्ट्रेट की यह राय हो कि उस व्यक्ति के विरुद्ध निवारणात्मक कार्यवाही की जानी चाहिए तो उसे बन्धपत्र को निष्पादित किया जाने का आदेश दिया जा सकता है। ऐसा बन्धपत्र प्रतिभूओं सहित या रहित हो सकता है और ऐसे बन्धपत्र की अवधि 1 वर्ष है।

V. संदिग्ध व्यक्तियों से प्रतिभूति (धारा 109) :

धारा 109 की यह शक्ति कार्यपालक मजिस्ट्रेट को है जब कोई व्यक्ति अपनी पहचान को छिपाता है और उसके विरुद्ध ऐसी धारणा बनती है कि वह कोई संज्ञेय अपराध करने वाला है तो उसके विरुद्ध कारण बताओ नोटिस जारी किया जा सकता है। जांच के बाद यदि मजिस्ट्रेट सन्तुष्ट हो तो उसे बन्धपत्र निष्पादित किये जाने का आदेश दिया जा सकता है। ऐसा बन्धपत्र प्रतिभूओं सहित या रहित हो सकता है। ऐसे बन्धपत्र की अधिकतम अवधि एक वर्ष है।

VI. अभ्यासित अपराधियों से प्रतिभूति (धारा 110) :

जब कार्यपालक मजिस्ट्रेट को सूचना दी जाती है अथवा उसे ज्ञात होता है कि कोई व्यक्ति ऐसा कार्य कर रहा है जो धारा 110 में दिये गये हैं या ऐसे कार्यों का आदतन अपराधी है तो उसके विरुद्ध कारण बताओ नोटिस जारी किया जा सकता है और जांच के बाद यदि मजिस्ट्रेट उचित समझता है तो ऐसे व्यक्ति को बन्धपत्र निष्पादित करने का आदेश दे सकता है। ऐसा बन्धपत्र प्रतिभूओं सहित हो सकता है और उसका अधिकतम समय तीन वर्ष है।

अनियमित कार्यवाहियां (धारा 460-466)

I. परिचय :

न्यायालय के द्वारा सद्भावनापूर्वक हुयी गलतियों के आधार पर न्यायिक कार्यवाहियों को अप्रभावों एवं अमान्य होने से बचाने के लिए अनियमित कार्यवाहियों से संबंधित प्रावधान अधिनियमित किये गये हैं। यदि इन गलतियों से किसी व्यक्ति के साथ अन्याय हो जाये तो विचारण को अपास्त कर दिया जाना चाहिये किन्तु यदि गलती न्याय को प्रभावित नहीं करती है तो कार्यवाही मान्य होगी।

II. अनियमितितायें जो कार्यवाही को दूषित नहीं करती (धारा 460) :

निम्न कार्यों को करने में अक्षम मजिस्ट्रेट द्वारा सद्भावना से की गई गलती से कार्यवाही को दूषित नहीं माना जायेगा :-

1. धारा 94 के अधीन तलाशी वारण्ट जारी करना।
2. किसी अपराध का अन्वेषण करने के लिए पुलिस को धारा 155 के अधीन आदेश देना।
3. Cr.P.C. की धारा 176 के अन्तर्गत मृत्यु समीक्षा करना।
4. धारा 192 (2) के अन्तर्गत मामला अन्तरित करना।
5. धारा 306 के अधीन किसी अभियुक्त को क्षमादान देना।
6. धारा 410 के अधीन मामले को वापस मंगाकर स्वयं विचारण करना।
7. धारा 458 और 459 के अधीन संपत्ति का विक्रय करना।

III. अनियमितितायें जो कार्यवाही को दूषित करती हैं :

यदि कोई मजिस्ट्रेट निम्न बातों में कार्यवाही करता है जो विधि द्वारा इसके लिए प्राधिकृत नहीं है तो कार्यवाही शून्य मानी जायेगी :-

1. धारा 83 के अधीन संपत्ति को कुर्क करना तथा विक्रय करना।
2. डाक तार विभाग के अधिकारी की अभिरक्षा में किसी दस्तावेज आदि के लिए तलाशी वारण्ट जारी करना।
3. परिशान्ति बनाये रखने के लिए प्रतिभूति की मांग करना। (धारा 106, 107)
4. सदाचार के लिए प्रतिभूति की मांग करना। (धारा 108, 109, 110)
5. सदाचारी बने रहने के लिए आबद्ध व्यक्ति को उन्मोचित करना।
6. परिशान्ति के बन्धपत्र को रद्द करना।
7. भरणपोषण का आदेश देना।
8. धारा 133 के अधीन आदेश देना।
9. धारा 143 के अधीन निषेधाज्ञा जारी करना।
10. Cr.P.C. के अध्याय 10 के अधीन लोक व्यवस्था एवं प्रशान्ति बनाये रखने के लिए आदेश जारी करना।
11. धारा 190 (1) (c) के अन्तर्गत किसी अपराध का संज्ञान लेना।
12. अपराधी का विचारण या संक्षिप्त विचारण करना।
13. धारा 325 के अधीन अन्य मजिस्ट्रेट द्वारा अभिलिखित कार्यवाही पर दण्डादेश पारित करना।
14. अपील का विनिश्चय करना।
15. कार्यवाही को धारा 397 के अधीन मंगाना।
16. धारा 446 के अधीन पारित आदेश का पुनरीक्षण करना आदि।

IV. गलत स्थान पर कार्यवाही (धारा 462) :

यदि कोई आदेश दण्डादेश जांच विचारण या अन्य कार्यवाही किसी गलत सेशन न्यायालय या किसी स्थानीय क्षेत्र में संपन्न हो गयी है तो उसे केवल इस आधार पर निरस्त नहीं किया जायेगा कि कार्यवाही गलत स्थान पर की गई है।

मंगलदास बनाम राज्य AIR 1960 SC यदि पक्षकारों के साथ न्याय न हो पाया हो तो कार्यवाही या निर्णय की अपास्त किया जाना चाहिए।

V. धारा 164 या धारा 281 के अन्तर्गत संस्वीकृति अभिलिखित करना (धारा 463) :

धारा 164 एवं 281 अभियुक्त की संस्वीकृति और अभियुक्त के कथन को अभिलिखित करने की प्रक्रिया विहित करते हैं। ये आवश्यकतायें आबद्धकारी प्रकृति की हैं। अतः इनकी पालन की जानी चाहिए। जब इस प्रकार की कार्यवाही की वैधता को अनियमितता के आधार पर चुनौती दी जाती है तो न्यायालय के द्वारा

मामले के तथ्यों और परिस्थितियों का परीक्षण किया जाता है और यदि न्यायालय यह पाता है कि जो अनियमितता की गई है उसने मामले को प्रभावित किया है तो न्याय के हित में ऐसे साक्ष्य को ग्रहण नहीं किया जायेगा।

VI. आरोप विरचित करने में अनियमितता (धारा 464) :

यदि किसी अपराध में कोई आरोप नहीं लगाया गया है या आरोप विरचित करने में कोई गलती की गई है तथा उस आरोप के आधार पर अभियुक्त को दोषसिद्ध कर दिया गया है तो साधारण नियम यही है कि ऐसी अनियमितता या कमी के आधार पर निर्णय या आदेश को अपास्त नहीं किया जायेगा। लेकिन यदि अपीलीय या पुनरीक्षण न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि ऐसी गलती का अनियमितता के कारण अभियुक्त भुलावे में पड़ गया है और उचित प्रकार से अपना बचाव न कर पाया है तो अपीलीय या पुनरीक्षण न्यायालय के द्वारा ऐसे निर्णय या आदेश को अपास्त किया जा सकता है और पुनः विचारण का आदेश दिया जा सकता है।

VII. निर्णय या आदेश में गलती (धारा 465) :

According to Section 465, किसी सक्षम न्यायालय के निर्णय अथवा आदेश को अपीलीय या पुनरीक्षण न्यायालय के द्वारा किसी लोप या गलती या अनियमितता के कारण तब तक नहीं उलटा जायेगा जब तक कि ऐसे अपीलीय न्यायालय या पुनरीक्षण न्यायालय की राय में अभियुक्त के साथ अन्याय न हुआ हो।

Rajni

निर्देश एवं पुनरीक्षण (धारा 395-405)

प्रश्न धारा 395 में दिये गये उपबन्ध का क्या उद्देश्य है?

उत्तर किसी विधि की वैधता की शंका के मामले में उच्च न्यायालय द्वारा विधि की वैधता का विनिश्चय करवाना इसका उद्देश्य है निम्न न्यायालयों की वैधता का विनिश्चय करने की शक्ति है - (1) उच्च न्यायालय (2) सर्वोच्च न्यायालय।

धारा 395 के अन्तर्गत यह शक्ति उच्च न्यायालय को प्राप्त है। इसलिये मामले का निर्देश केवल संबंधित उच्च न्यायालय को ही किया जा सकता है। विधि की वैधानिकता का विनिश्चय कराने के लिए मामले को सर्वोच्च न्यायालय में सीधे नहीं भेजा जायेगा। पहले वह मामला उच्च न्यायालय के पास भेजा जाता है तथा H.C. द्वारा दिये गये निर्णय के आधार पर अधीनस्थ न्यायालय द्वारा निर्णय दिया जाता है।

प्रश्न निर्देश का क्या अभिप्राय है तथा इसकी प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।

उत्तर निर्देश का अभिप्राय (धारा 395) - जब किसी मामले में अधीनस्थ न्यायालय के सामने किसी नियम अध्यादेश या अधिनियम की वैधता या विधिमान्यता का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है व ऐसा नियम अधिनियम अध्यादेश अप्रवर्तनशील है। जिसे उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय द्वारा असवैधानिक घोषित नहीं किया गया है। तो अधीनस्थ न्यायालय अपनी राय, कथन व कारणों का सार तैयार करके उच्च न्यायालय के विनिश्चय के लिए मामला निर्देशित करता है। H.C. उसकी वैधता का विनिश्चय करेगा और अपने निर्णय की एक प्रति अधीनस्थ न्यायालय के पास भेजेगा। अधीनस्थ न्यायालय द्वारा उसके आधार पर वाद का निर्णय किया जायेगा।

प्रक्रिया :-

1. किसी अधीनस्थ न्यायालय में कोई आपराधिक मामला लम्बित होना।
2. उस मामले में लागू की जाने वाली विधि की वैधता के विषय में शंका उत्पन्न होना।
3. न्यायालय को यह ज्ञात हो कि विधि की वैधानिकता का विनिश्चय S.C. द्वारा नहीं किया गया है।
4. विचारण न्यायालय के द्वारा रिपोर्ट तैयार करना और उच्च न्यायालय को प्रेषित कर दिया जाना।
5. जब किसी मामले का निर्देश किया जाता है तो H.C. के द्वारा उसकी वैधता का विनिश्चय किया जायेगा। ऐसे मामले में H.C. के द्वारा मामले का निर्धारण नहीं किया जाता। इसलिए मामला उसी न्यायालय में लम्बित रहता है जहां उसका विचारण किया जाता है।
6. उच्च न्यायालय द्वारा वैधता का विनिश्चय किया जाना और संबंधित न्यायालय को उचित निर्देश दिया जाना।
7. धारा 396 के अन्तर्गत H.C. द्वारा दिये गये निर्देशों के अनुसार मामले का निस्तारण किया जाता है।

पुनरीक्षण (Revision)

प्रश्न पुनरीक्षण से संबंधित विधि को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर जबकि दीवानी मामलों में पुनरीक्षण की शक्ति केवल उच्च न्यायालय को उपलब्ध है जिला न्यायालय को नहीं।

आपराधिक मामलों में सत्र न्यायालय की शक्ति और उच्च न्यायालय की शक्ति समान है अर्थात् यदि सत्र न्यायालय के द्वारा पुनरीक्षण के दौरान कोई आदेश दिया गया है तो ऐसे आदेश की वैधता को उच्च न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती। यद्यपि उच्च न्यायालय द्वारा अपनी अन्तर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए सत्र न्यायालय के निर्णय को अपास्त किया जा सकता है।

धारा 401 के अनुसार यदि निर्णय या आदेश के विरुद्ध अपील का उपबन्ध है तो पुनरीक्षण नहीं हो सकती। यदि अपील उपलब्ध है और विहित परिसीमा काल में उसे पेश नहीं किया गया तो इस आधार पर पुनरीक्षण के आवेदन को स्वीकार नहीं किया जाता। ऐसे मामलों में यही उचित होता है कि वह परिसीमा अधिनियम 1963 की धारा 5 के अन्तर्गत उचित कारण बताते हुए देरी की माफी के लिए आवेदन करे तो ऐसी दशा में अपीलीय न्यायालय को यह विवेक शक्ति उपलब्ध है कि वह अपील की अर्जी को स्वीकार कर सकता है।

यदि अपील का अधिकार है और अपील की अर्जी पेश करने के लिए परिसीमा अवधि समाप्त नहीं हुयी है तथा पक्षकार ने अपील की अर्जी के स्थान पर पुनरीक्षण का आवेदन कर दिया है तो ऐसी पुनरीक्षण की अर्जी को अपील की अर्जी के रूप में स्वीकार किया जा सकता है और अपील के रूप में ही उसका विनिश्चय किया जा सकता है।

धारा 402 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय को पुनरीक्षण के मामलों को वापस लेने या अन्तरित करने की शक्ति दी गयी है। यदि किसी मामले में दो या दो से अधिक अभियुक्त हों और उनमें से कोई उच्च न्यायालय में पुनरीक्षण का आवेदन करे और कोई सत्र न्यायालय में आवेदन करे और वह तथ्य उच्च न्यायालय के ध्यान में आता है कि सत्र न्यायालय में भी पुनरीक्षण का आवेदन किया जा चुका है तो ऐसी दशा में उच्च न्यायालय इस बात का निर्धारण करेगा कि कौन सा न्यायालय उन दोनों आवेदनों पर विचार करे। यदि H.C. यह समझता है कि दोनों ही आवेदन सत्र न्यायालय के द्वारा निर्धारित किये जायें तो H.C. के सामने किये गये आवेदन को भी सत्र न्यायालय को अन्तरित कर दिया जायेगा। यदि H.C. यह समझता है कि दोनों का निर्धारण H.C. द्वारा किया जाना चाहिए तो सत्र न्यायालय के सामने पेश किये गये आवेदन को अपने पास मंगा सकता है।

Rough

मृत्यु दण्ड की पुष्टि (धारा 366-371)

प्रश्न मृत्यु दण्ड की पुष्टि किसके द्वारा की जा सकती है?

उत्तर मृत्यु दण्ड की पुष्टि (धारा 366-371) - मृत्यु दण्ड की पुष्टि उच्च न्यायालय की खण्डपीठ (कम से कम दो न्यायाधीश) के द्वारा की जा सकती है यदि सत्र न्यायालय के द्वारा किये गये मृत्युदण्ड की सजा के विरुद्ध अपील दायर की गई हो तो मृत्युदण्ड की पुष्टि तब तक नहीं की जायेगी जब तक अपील का निस्तारण न कर दिया गया हो।

प्रश्न मृत्युदण्डादेश की पुष्टि करने के संबंध में उच्च न्यायालय को क्या-क्या शक्तियां है?

उत्तर H.C. को निम्न शक्तियां प्राप्त हैं :-

1. मृत्यु दण्डादेश की पुष्टि करना या मृत्युदण्डादेश को शून्य घोषित करना।
2. मृत्यु दण्डादेश को आजीवन कारावास या किसी अन्य दण्डादेश में परिवर्तित करना।
3. उच्च न्यायालय उस मामले का पुनः विचारण करने का आदेश दे सकता है या अभियुक्त को दोषमुक्त घोषित कर सकता है।
4. उच्च न्यायालय दोषी या निर्दोष होने से संबंधित प्रश्न पर अतिरिक्त जांच या अतिरिक्त साक्ष्य लेने या स्वयं ऐसी जांच करने या सत्र न्यायालय को ऐसा करने का निर्देश देने की शक्ति।

Rimjhim

निष्पादन

प्रश्न किन परिस्थितियों में मृत्यु दण्डादेश के निष्पादन को आस्थगित किया जा सकता है?

उत्तर -

1. जब दण्डादिष्ट व्यक्ति को अपील करने का अधिकार हो और अपील का मर्यादा काल समाप्त नहीं हुआ है या अनुच्छेद 134 के अन्तर्गत अपील सर्वोच्च न्यायालय में दायर की गई हो तो अपील की सुनवाई तक के समय के लिए मृत्युदण्ड को मुल्तवी कर दिया जायेगा।
2. यदि उच्च न्यायालय ने मृत्युदण्ड दिया हो और दण्डादिष्ट व्यक्ति ने अनुच्छेद 134 (1) या अनुच्छेद 132 के अधीन उच्च न्यायालय में प्रमाणपत्र के लिए आवेदन किया हो तो जब तक आवेदन का निपटारा नहीं हो जाता मृत्यु दण्ड आस्थगित रहेगा।
3. यदि दण्डादिष्ट व्यक्ति ने अनुच्छेद 136 के अधीन विशेष इजाजत से अपील के लिए सर्वोच्च न्यायालय ने आवेदन किया है तब उच्च न्यायालय इतनी अवधि के लिए दण्डादेश को मुल्तवी कर देगा जब तक सर्वोच्च न्यायालय अपील का निस्तान्तरण न कर दे।
4. यदि दण्डादिष्ट व्यक्ति द्वारा क्षमा याचना के लिए राष्ट्रपति को आवेदन दिया है तो जब तक राष्ट्रपति महोदय द्वारा आवेदन का निस्तारण न कर दिया जाये तब तक मृत्युदण्ड आस्थगित रहेगा। (Article 72)
5. यदि दण्डादिष्ट व्यक्ति गर्भवती स्त्री है तब बच्चे के जन्म लेने तक मृत्यु दण्ड को मुल्तवी कर दिया जायेगा।

Rajni

अन्तर्निहित शक्तियां

प्रश्न दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय की अन्तर्निहित शक्तियों पर एक टिप्पणी लिखिए।

उत्तर दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482 में कहा गया है कि "इस संहिता की कोई बात उच्च न्यायालय की ऐसे आदेश देने की अन्तर्निहित शक्ति को सीमित या प्रभावित करने वाली न समझी जायेगी जैसे इस संहिता के अधीन किसी आदेश को प्रभावी करने के लिए या किसी न्यायालय की कार्यवाही का दुरूपयोग निवारित करने के लिए या किसी अन्य प्रकार से न्याय के उद्देश्यों की प्राप्ति सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक हो।" धारा 482 के द्वारा उच्च न्यायालय को अतिरिक्त शक्तियां प्रदान नहीं की गई हैं। इनके द्वारा मात्र उच्च न्यायालय में पूर्व में ही निहित शक्तियों को मान्यता प्रदान की गई है। धारा 482 Cr.P.C. CPC की धारा 151 के समान ही है।

मधु लिमाये बनाम महाराष्ट्र राज्य, AIR 1978 SC के वाद में सर्वोच्च न्यायालय को अन्तर्निहित शक्तियों का प्रयोग निम्नलिखित सिद्धान्तों के अन्तर्गत करना चाहिए :-

1. यदि पीड़ित पक्षकार को उपचार प्रदान करने के लिए संहिता में व्यक्त प्रावधान हों तो न्यायालय द्वारा अन्तर्निहित शक्तियों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।
2. इन शक्तियों का प्रयोग न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए तथा न्याय के हित में कभी-कभार ही करना चाहिए।
3. यदि संहिता के किसी प्रावधान में कोई प्रतिबन्ध आरोपित किया गया हो तो अन्तर्निहित शक्तियों का प्रयोग करके उस प्रतिबन्ध का उल्लंघन नहीं किया जाना चाहिए।

ललित मोहन मण्डल बनाम राज्य, AIR 1982 SC - न्यायालय अपनी अन्तर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए अपने पूर्ववर्ती आदेश को अपास्त कर सकता है, उनका पुनर्विलोकन कर सकता है तथा उसको वापस ले सकता है।

रतिलाल बनाम सहायक केलेक्टर कस्टम 69 BLR 855 - उच्च न्यायालय को प्रदान की गई शक्तियां (धारा 482), संविधान के अनुच्छेद 21 में वर्णित विधि की परिभाषा में आती है। अतः जब उच्च न्यायालय द्वारा Section 436 Cr.P.C. के अन्तर्गत जमानतीय अपराध में जमानत को रद्द कर दिया हो। इससे किसी व्यक्ति के जीवन के अधिकार का हनन नहीं होता है।

कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय बनाम राज्य AIR 1977 SC - सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि अन्तर्निहित शक्तियों का प्रयोग विरलतम से विरल मामलों में किया जाना चाहिए। इन शक्तियों का प्रयोग मनमाने ढंग से नहीं किया जाना चाहिए।

निम्नलिखित मामलों में अन्तर्निहित शक्तियों का प्रयोग किया जाना चाहिए :-

1. गंभीर एवं स्पष्ट अन्याय में उपचार प्रदान करने के लिए इनका प्रयोग किया जाना चाहिए।
2. संहिता द्वारा अपरिकल्पित प्रार्थना-पत्र को स्वीकार करने के लिए इनका प्रयोग किया जाना चाहिए।
3. जब विधि के किसी प्रावधान का स्पष्टतः उल्लंघन किया गया हो।
4. किसी अभियुक्त को न्यायालय में उपस्थित होने से छूट देने के लिए इनका प्रयोग किया जा सकता है।
5. जिस मामले में अपील का निस्तारण किसी व्यक्ति को बिना उसकी गलती के सुनवाई का अवसर दिये बिना ही कर दिया गया हो, में अपील की सुनवाई पुनः करने का निर्देश देना।
6. उस विधिक कार्यवाही को रद्द करना जिसको प्रारंभ करने के विरुद्ध कोई विधिक बाधा हो।
7. उस कार्यवाही को रद्द करना जिसमें आरोप के समर्थन में कोई साक्ष्य प्रस्तुत ही न किया गया हो। ***[P.P. Kapoor AIR 1960 SC]***
8. FIR को अपास्त विरलतम से विरल मामलों (Rarest of the rare cases) में ही किया जाना चाहिए। ***[Rajesh Bajaj vs. NCT, Delhi 1999 (SC)]***

निम्नलिखित मामलों में अन्तर्निहित शक्तियों का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए :-

1. पुलिस के संज्ञेय मामलों में अन्वेषण करने के अधिकार में हस्तक्षेप करना। ***[S.N. Basak vs. State, AIR 1963 SC]***
2. उस FIR को अपास्त करना जिसमें अपराध के कोई तत्व प्रकट नहीं होते जबकि अन्वेषण को अन्य साक्ष्य के आधार पर जारी रखा जा सकता है।

3. किसी अपराध की जांच में बाधा उत्पन्न करना जबकि परिवाद या FIR में किसी अपराध के तथ्य प्रकट हो रहे हों। *[रूपन देवल बजाज बनाम K.P.S. Gill, AIR 1996 SC]*
4. अन्तर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए जमानत नहीं दी जा सकती। *[Ram Niwas vs. State, 1990 (All)]*
5. अन्तर्निहित शक्तियों का प्रयोग मात्र अन्तिम आदेश के विरुद्ध किया जा सकता है। अन्तवर्ती आदेश (Interim Order) के विरुद्ध इनका प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए।
6. अन्वेषण के दौरान किसी अभियुक्त की गिरफ्तारी पर प्रतिबंध लगाना। *[Ashok Kumar Singh vs. State, (SC) 1993]*

क्या अन्तर्निहित शक्तियों का प्रयोग अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा किया जा सकता है?

धारा 482 द्वारा मात्र उच्च न्यायालय को अन्तर्निहित शक्तियां प्रदान की गई हैं। केरला उच्च न्यायालय का मत है कि यद्यपि धारा 482 इस संबंध में मौन है परन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि अधीनस्थ न्यायालयों के द्वारा इन अन्तर्विहित शक्तियों का प्रयोग ही नहीं किया जा सकेगा। [In re State of Kerala, 1973 Cr.L.J. 1288]

क्या धारा 482 के अन्तर्गत दिये गये आदेश के विरुद्ध अपील की जा सकती है?

धारा 482 के अन्तर्गत प्रदान की गई शक्तियां पर्यवेक्षण प्रकार की है। इनका प्रयोग अधीनस्थ न्यायालयों में लम्बित कार्यवाहियों के संबंध में किया जाता है। तथा इन शक्तियों का प्रयोग न्यायालय द्वारा अपने मूल क्षेत्राधिकार के प्रयोग में नहीं करता है। अतः इनके अन्तर्गत पारित किये गये आदेश के विरुद्ध अपील नहीं की जा सकती।

Ram

लोक व्यवस्था एवं प्रशान्ति (धारा 129-148)

प्रश्न दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 133 के अन्तर्गत कब कार्यपालक मजिस्ट्रेट द्वारा न्यूसेन्स हटाने का आदेश दिया जा सकता है?

उत्तर जब पुलिस अधिकारी की रिपोर्ट से या अन्यथा कार्यपालक मजिस्ट्रेट को इस आशय की इत्तिला मिले कि -

1. किसी लोक स्थान या किसी मार्ग, नदी या जल सारणी से जो जनता द्वारा विधिपूर्वक उपयोग में लाई जाती है या लाई जा रही है, कोई विधिविरुद्ध बाधा या न्यूसेन्स हटाया जाना चाहिये, अथवा
2. किसी व्यापार या उपजीविका को चलाना या किसी माल या वस्तु को रखना समाज के स्वास्थ्य या शारीरिक सुख के लिए हानिकर है और परिणामतः ऐसा व्यापार या उपजीविका प्रतिषिद्ध या विनियमित की जानी चाहिए, अथवा
3. किसी भवन का निर्माण या किसी पदार्थ का व्ययन जिससे सम्भाव्य है कि अग्निकाण्ड या विस्फोट हो जाये, रोक दिया या बन्द कर दिया जाना चाहिए, अथवा
4. कोई भवन, तम्बू, संरचना या कोई वृक्ष ऐसी दशा में है कि सम्भाव्य है कि वह गिर जाये और पड़ोस में रहने या कारबार करने वाले या पास से निकलने वाले व्यक्तियों को उससे हानि हो और परिणामतः ऐसे भवन, तम्बू या संरचना को हटाना या उसकी मरम्मत करना या उसमें अवलम्ब लगाना या ऐसे वृक्ष को हटाना आवश्यक है, अथवा
5. ऐसे किसी मार्ग या लोक स्थान के पार्श्वस्थ किसी तालाब, कुएं या उत्खात (excavation) को इस प्रकार बाड़ लगा दी जानी चाहिए कि जनता को उससे किसी प्रकार का खतरा न हो, अथवा
6. किसी भयानक जीव जन्तु को नष्ट, परिरुद्ध या उसका अन्यथा व्ययन किया जाना चाहिये,

तब वह यथास्थिति ऐसे न्यूसेन्स को हटाने, विनियमित करने, अवलम्ब लगाने या बाड़ आदि लगाने का आदेश दे सकेगा।

प्रश्न उस प्रक्रिया का वर्णन कीजिये जो मजिस्ट्रेट द्वारा उस दशा में अपनाई जानी चाहिये जहां भूमि या जल से सम्बद्ध विवादों से परिशान्ति भंग होना संभाव्य है। ***[RJS 1991, 1992, Haryana 1986, UPPCS (J) 1982, 1985]***

उत्तर भूमि या जल से सम्बद्ध विवादों से परिशान्ति भंग होने की संभावना पर मजिस्ट्रेट द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया का उल्लेख दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 145-148 में किया गया है :-

जब भी पुलिस रिपोर्ट पर या अन्यथा किसी कार्यपालक मजिस्ट्रेट को यह समाधान हो जाये कि उसकी स्थानीय अधिकारिता में किसी भूमि या जल के विषय में विवाद उत्पन्न हो गया है जिससे शान्ति भंग होने की संभावना है तो वह संबंधित पक्षकारों को वास्तविक कब्जे के तथ्य के संबंध में अपने-अपने दावे प्रस्तुत करने का आदेश देगा।

ऐसे दावे पेश होने पर वह पक्षकारों के कथनों एवं उनका साक्ष्य लेखबद्ध करेगा तथा उन पर विचार करेगा। वह यह सुनिश्चित करेगा कि विवादग्रस्त संपत्ति पर किसका कब्जा है और सूचना मिलने की तिथि से ठीक दो माह में वास्तविक कब्जाधारी को कब्जे से वंचित तो नहीं कर दिया गया है। यदि कब्जे से वंचित किया गया है तो उसे कब्जा पुनः दिलाने का आदेश दे सकेगा और यदि वंचित नहीं किया गया है तो उसमें हस्तक्षेप न करने का आदेश दे सकेगा।

विवादग्रस्त विषयवस्तु कुर्क करने अथवा रिसीवर को नियुक्त करने का आदेश दे सकेगा तथा स्थानीय जांच की आवश्यकता होने पर ऐसी जांच के आदेश को पारित कर सकेगा।

प्रश्न भूमि के उपयोग के अधिकार से उत्पन्न ऐसे विवादों की जिससे शान्ति भंग होने की संभावना हो, की प्रक्रिया का वर्णन कीजिये। ***[RJS 1992]***

उत्तर दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 147 में भूमि एवं जल के उपयोग के अधिकार से उत्पन्न विवादों की प्रक्रिया का उल्लेख किया गया है। उसके अनुसार :-

1. जब किसी कार्यपालक मजिस्ट्रेट को किसी पुलिस अधिकारी की रिपोर्ट से या किसी अन्य सूचना से यह समाधान हो जाये कि उसकी स्थानीय अधिकारिता के अन्दर किसी भूमि के उपयोग के किसी अभिकथित अधिकार के बारे में विवाद उत्पन्न हो गया है जिससे परिशान्ति भंग होनी संभाव्य है, तब वह अपने समाधान के आधारों का कथन करते हुए विवाद से सम्बद्ध पक्षकारों से यह अपेक्षा करते हुए लिखित

आदेश दे सकता है कि विनिर्दिष्ट तारीख और समय पर न्यायालय में हाजिर हों और अपने-अपने दावों का लिखित कथन पेश करें।

2. मजिस्ट्रेट ऐसे कथनों को अभिलिखित करेगा, पक्षकारों को सुनेगा, उनके द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य को लेगा और यह विनिश्चय करेगा कि क्या ऐसा अधिकार है।
3. यदि मजिस्ट्रेट को यह प्रतीत होता है कि ऐसा अधिकार वर्तमान है तो वह ऐसे अधिकार के प्रयोग में किसी भी हस्तक्षेप का प्रतिषेध करने का एवं बाधा को हटाने का आदेश दे सकेगा।

प्रश्न न्यूसेन्स या आशंकित खतरे के अर्जेण्ट मामलों में धारा 144 Cr.P.C. के अन्तर्गत मजिस्ट्रेट को क्या शक्ति प्रदान की गई है? ***[Haryana 1998, H.P. 2000, expected question]***

उत्तर समाज में शान्ति व्यवस्था कायम करना प्रशासन का प्रमुख कार्य है। इस संबंध में धारा 144 Cr.P.C. के अन्तर्गत जिला मजिस्ट्रेट, उपखण्ड मजिस्ट्रेट या सशक्त कार्यपालक मजिस्ट्रेट को विशेष शक्तियां प्रदान की गई हैं। यदि ऐसे मजिस्ट्रेट की राय है कि उपद्रव या हिंसा या शान्ति भंग को रोकने के लिए तुरंत कार्यवाही करना समीचीन है या निवारणात्मक कार्यवाही किया जाना आवश्यक है, तो वह लिखित आदेश दे सकता है कि कोई व्यक्ति या व्यक्तियों का कोई वर्ग कोई कार्य करे या न करे अथवा ऐसी व्यवस्था करे कि निवारणात्मक कार्यवाही की जा सके।

साधारण परिस्थितियों में जब कभी इस प्रकार का आदेश दिया जाये तो ऐसा व्यक्ति जिसके विरुद्ध ऐसा आदेश दिया जाना है उन्हें/उसे सुनवाई का अवसर दिया जाता है। आपातकाल की दशा में मजिस्ट्रेट को एकपक्षीय आदेश जारी करने की शक्ति है।

इस प्रकार का आदेश किसी व्यक्ति के विरुद्ध अथवा व्यक्तियों के वर्ग के विरुद्ध अथवा जन साधारण के विरुद्ध भी दिये जा सकते हैं ताकि एक स्थान से दूसरे स्थान पर आने-जाने से रोका जा सके।

इस प्रकार के आदेश की अधिकतम अवधि 2 माह है लेकिन आपात काल की विशेष दशाओं में राज्य सरकार द्वारा इसे 6 माह के लिए और बढ़ाया जा सकता है। अतः इसे कुल 8 माह से अधिक अवधि के लिए नहीं बढ़ाया जा सकता है।

मजिस्ट्रेट ऐसे आदेश को स्वयं या किसी व्यक्ति की प्रार्थना पर परिवर्तित या समाप्त कर सकता है। राज्य सरकार द्वारा भी इसे वापस लिया जा सकता है। जब कभी ऐसे आदेश को वापस लिये जाने के लिए कोई आवेदन किया गया है तो शीघ्र ही ऐसे आवेदक को आदेश वापस लिये जाने के कारण पेश करने या बताये जाने का अवसर दिया जायेगा।

यदि ऐसे आवेदन को अस्वीकार किया जाता है तो ऐसा किये जाने के कारणों को अभिलिखित करेगा।

Rajni

अपील (धारा 372-394)

I. परिचय :

आपराधिक न्याय प्रशासन के सिद्धान्तों में से एक सिद्धान्त यह है कि ऐसा व्यक्ति जिसके विरुद्ध निर्णय या आदेश पारित किया गया है, उसे अपील करने का अधिकार होना चाहिए। अपील सदैव उच्च स्तर के न्यायालय में होती है जिसके अधीन आदेश या निर्णय देने वाला न्यायालय कार्य करता है। दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 372 से 394 में अपील के बारे में उपबन्ध किये गये हैं।

II. जब तक अन्यथा उपबन्धित न हो किसी अपील का न होना (धारा 372) :

किसी दण्ड न्यायालय के निर्णय या आदेश के विरुद्ध अपील तभी होगी जब या तो इस संहिता में उपबन्ध किया गया है या अन्य किसी विधि में उपबन्ध किया गया हो। धारा 401 का विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि यदि अपील उपलब्ध न हो तो पुनरीक्षण का आवेदन किया जा सकता है। धारा 399 में भी इसी प्रकार का प्रावधान है। यदि अपील उपलब्ध हो परन्तु उसके स्थान पर पुनरीक्षण का आवेदन कर दिया गया हो तो ऐसी दशा में न्यायालय के द्वारा पुनरीक्षण के आवेदन को अपील के रूप में स्वीकार किया जा सकता है और उसे उसी प्रकार निर्णित किया जा सकता है जैसे कि वह अपील हो।

III. वे मामले जिनमें अपील नहीं होती है (धारा 375-376) :

कुछ मामलों में अपील नहीं की जा सकती। वे मामले इस प्रकार हैं :-

(1) अपराध स्वीकार करना (धारा 375) :

सामान्य सिद्धान्त यह है कि जब अभियुक्त के द्वारा अपने अपराध को स्वीकार किये जाने पर दोषसिद्धि की जाती है तो ऐसी दशा में दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील नहीं की जा सकती। इसके संबंध में प्रमुख बातें निम्नलिखित हैं :-

1. जब अपराध स्वीकार किये जाने पर अभियुक्त दोषसिद्ध किया जाता है तो अपील नहीं होगी। यद्यपि भारतीय संविधान का अनुच्छेद 136 इस सामान्य नियम का अपवाद है।
2. यदि अभियुक्त को सत्र न्यायालय या मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट या न्यायिक मजिस्ट्रेट (प्रथम वर्ग) या द्वितीय वर्ग के द्वारा उसके अपराध की स्वीकृति पर दोषसिद्ध किया जाता है तो ऐसी दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील नहीं होगी। लेकिन ऐसे मामलों में भी दण्ड की मात्रा तथा वैधता के आधार पर अपील की जा सकती है।

(2) छोटे मामलों में अपील का न होना (धारा 376) :

निम्न मामले लघु या छोटे हैं जिनमें अपील नहीं हो सकती है :-

1. जहां उच्च न्यायालय ने केवल 6 माह तक का कारावास या एक हजार रुपये तक जुर्माना या दोनों का दण्डादेश दिया हो।
2. जहां सत्र न्यायालय या महानगरीय मजिस्ट्रेट तीन माह तक का कारावास या 200 रुपये तक का जुर्माना या दोनों का दण्डादेश देता है।
3. जहां न्यायिक मजिस्ट्रेट (प्रथम वर्ग) ने मात्र 100 रुपये तक का जुर्माना किया हो।
4. जहां संक्षिप्त विचारण में किसी मामले में अभियुक्त पर 200 रुपये तक का जुर्माना आरोपित किया गया हो।

उक्त वर्णन से स्पष्ट है कि जहां अपराध को स्वीकार करने पर अथवा छोटे मामलों में अभियुक्त को दोषसिद्ध किया गया हो तो अपील नहीं होगी परन्तु ऐसे मामलों में भी दण्ड की मात्रा एवं वैधता को चुनौती दी जा सकती है।

IV. दोषसिद्धि से अपील :

धारा 373 के अन्तर्गत दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील अभियुक्त के द्वारा की जाती है।

1. द्वितीय या प्रथम वर्ग न्यायिक मजिस्ट्रेट या मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के निर्णय के विरुद्ध अपील सत्र न्यायालय में की जा सकती है।
2. सहायक सत्र न्यायाधीश के द्वारा दिये गये निर्णय के विरुद्ध अपील का विनिश्चय सत्र न्यायालय कर सकता है।
3. अतिरिक्त सत्र न्यायालय सत्र न्यायालय के समकक्ष होता है।

साधारणतः अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, सहायक सत्र न्यायाधीश, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट स्वतंत्र रूप से अपीलीय क्षेत्राधिकार का प्रयोग नहीं करते हैं लेकिन वे अपीलों का विनिश्चय कर सकते हैं यदि ऐसी अपीलों को सत्र न्यायालय के द्वारा उन्हें अन्तरित किया गया हो या उच्च न्यायालय के द्वारा उन्हें विशेषतया अपील के विनिश्चय की अधिकारिता दी गई हो।

4. सत्र न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध अपील उस राज्य के उच्च न्यायालय में होगी।
5. Cr.P.C. की धारा 374 के अनुसार उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध अपील सर्वोच्च न्यायालय में होगी।
6. सर्वोच्च न्यायालय में अपील धारा 374, 379 Cr.P.C. तथा संविधान के अनुच्छेद 134 एवं 136 के अन्तर्गत की जा सकती है।

दोषसिद्धि के मामलों में सर्वोच्च न्यायालय में अपील के निम्न नियम लागू होते हैं :-

1. यदि अभियुक्त को उच्च न्यायालय ने दोषसिद्ध किया है और अपील के लिए प्रमाण-पत्र भी दिया है तो सर्वोच्च न्यायालय में इस आधार पर अपील हो सकती है कि उस मामले में विधि का कोई सारभूत प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है। (अनुच्छेद 132/134)
2. यदि उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय के दोषमुक्ति के आदेश को उलट दिया है और उसे दोषसिद्ध किया है और उसे मृत्यु दण्ड या आजीवन कारावास या दस वर्ष से अधिक के कारावास का दण्ड दिया है तो ऐसी दशा में अभियुक्त अधिकार के रूप में अपील कर सकता है। इसमें प्रमाण-पत्र की आवश्यकता नहीं है। (अनुच्छेद 134, धारा 379 Cr.P.C.)
3. यदि उच्च न्यायालय ने अपने असाधारण मूल दाण्डिक क्षेत्राधिकार के प्रयोग में किसी मामले का विचारण किया है और अभियुक्त को सिद्धदोष किया है और उसे आजीवन कारावास या दस वर्ष से अधिक के कारावास का दण्ड दिया है तो ऐसी दशा में अभियुक्त अधिकार स्वरूप अपील कर सकता है। इसमें प्रमाण-पत्र की आवश्यकता नहीं है। (अनुच्छेद 134, धारा 374 Cr.P.C.)
4. अन्य मामलों में संविधान के अनुच्छेद 136 के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय में अपील करने की विशेष अनुमति दी जा सकती है।
5. यदि दो या अधिक व्यक्तियों को सिद्धदोष किया गया था उनमें से एक या अधिक ने अपील की है लेकिन सभी ने नहीं की है तो न्यायालय ऐसे सभी व्यक्तियों को लाभ दे सकता है जिन्हें सिद्धदोष किया गया था। (धारा 380 Cr.P.C.)

V. दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील (धारा 377 एवं 378) :

अभियोजन के द्वारा अपील दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध होगी या दोषसिद्धि के आदेश के विरुद्ध दण्ड की मात्रा के अपर्याप्त के आधार पर होगी। ऐसी अपील राज्य सरकार या निजी व्यक्ति के द्वारा की जा सकती है। यदि अपील समुचित सरकार के निर्देश पर न होकर निजी व्यक्ति के विकल्प पर की गई हो तो न्यायालय की अनुमति आवश्यक है। यदि अपील परिवाद के मामले में हो रहा हो तो लोक सेवक परिवादी अपील आदेश की तिथि से 6 माह की अवधि में कर सकता है। यदि परिवादी प्राइवेट व्यक्ति हो तो ऐसी अपील आदेश होने के 60 दिन की अवधि में कर सकता है। (धारा 377 एवं 378)

VI. अपील की सुनवाई और उसका विनिश्चय – प्रक्रिया :

अपील एक अर्जी या ज्ञापन या याचिका के रूप में पेश की जाती है। अर्जी या ज्ञापन का लिखित होना आवश्यक है। अपील का प्रारूप अनुसूची में नहीं दिया गया है। धारा 476 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय के द्वारा अपील का प्रारूप विहित किया जा सकता है। अपील का ज्ञापन अभिवचन के सिद्धान्तों या नियमों के आधार पर तैयार किया जाता है।

(1) अपील का प्रारूप :

1. न्यायालय का नाम जैसे सत्र न्यायालय, उच्च न्यायालय आदि।
2. अपील के नम्बर एवं वर्ष आदि।
3. पक्षकारों के विवरण – सरकार व पीड़ित पक्षकारों में से दोनों अपील में जा सकते हैं जो अपील में जाता है अपीलार्थी और दूसरा प्रत्यर्थी होगा। किसी अपील में दो या दो से अधिक अपीलार्थी या प्रत्यर्थी हो सकते हैं उनको आपस में सह अपीलार्थी या सह प्रत्यर्थी कहा जा सकता है।
4. अपील का विषय लिखा जायेगा और यह भी बताया जायेगा कि इस मामले में न तो कोई अन्य अपील की गई है न ही लम्बित है और न ही निर्णीत हुई है।
5. अपील की अन्तर्वस्तु अर्थात् मामले का संक्षिप्त कथन।

6. अपीलार्थी और प्रत्यर्थी का मामला।
7. विचारण न्यायालय का निष्कर्ष व निर्णय।
8. उन आधारों का उल्लेख जिनके आधार पर निर्णय को चुनौती दी गई है।
9. चाहा गया अनुतोष या प्रार्थना।
10. परिसीमा अवधि में अपील दायर किये जाने का कथन। यदि अपील विलम्ब से दायर की गई हो तो उचित कारण का उल्लेख किया जाना चाहिए। (धारा 5, परिसीमा अधिनियम, 1963)
11. क्षेत्राधिकार के संबंध में कथन।
12. स्थान, दिनांक एवं अपीलार्थी के हस्ताक्षर।
13. सत्यापन।
14. अपीलार्थी के हस्ताक्षर, स्थान एवं दिनांक। यदि अपील में न्यायालय शुल्क अदा किया जाना आवश्यक हो तो शुल्क की अदायगी के बारे में भी कथन किया जाना चाहिए।

धारा 382 विहित करती है कि अपील की अर्जी के साथ उस आदेश अथवा उस निर्णय की प्रति भी होगी जिसके आधार पर अपील पेश की गई है। अपील की अर्जी स्वयं अपीलार्थी के द्वारा या उसके प्लीडर के द्वारा पेश की जा सकती है।

(2) जब अपीलार्थी जेल में हो तब प्रक्रिया (धारा 383) :

जब अपीलार्थी जेल में हो तब वह जेल के अधिकारी के माध्यम से अपील कर सकता है और जेल अधिकारी अपने हस्ताक्षर करके अपील की मर्जी को न्यायालय में पेश करेगा। साथ ही अपीलार्थी की तरफ से कोई अन्य व्यक्ति भी अपील की अर्जी पेश कर सकता है।

(3) अपील का संक्षेपतः खारिज किया जाना (धारा 384) :

जब अपीलीय न्यायालय के सामने अपील की अर्जी पेश की जाती है और न्यायालय यह समझता है कि उस अपील को स्वीकार किये जाने का कोई आधार नहीं है तो उसे संक्षेपतः खारिज किया जा सकता है। अपील को संक्षेपतः खारिज करने से पूर्व न्यायालय अपीलार्थी को सुनवाई का अवसर अवश्य उपलब्ध करवाता है। जब अपील की अर्जी को इस प्रकार खारिज कर दिया गया हो तो उसे पुनः पेश नहीं किया जा सकता।

(4) अपील की सुनवाई (धारा 385) :

यदि किसी अपील की अर्जी को संक्षेपतः खारिज नहीं किया जाता है जब अपील की अर्जी को अपीलीय न्यायालय द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है तो न्यायालय सुनवाई के लिए आगे कार्यवाही करता है।

1. जब अपील को स्वीकार कर लिया जाता है तो प्रत्यर्थी के नाम सूचना (Notice) जारी की जाती है और सूचना के साथ अपील की एक प्रति भी प्रेषित की जाती है। इस सूचना की तामील उसी प्रकार की जाती है जैसे समन की तामील की जाती है।
2. विचारण न्यायालय जिसने निर्णय या आदेश दिया है उससे मामले का अभिलेख मंगवाया जायेगा परन्तु कुछ दशाओं में रिकार्ड नहीं मंगवाया जाता जैसे - (1) मृत्यु दण्डादेश की स्थिति में पुष्टि के लिए आया हुआ अभिलेख अपीलीय न्यायालय में पहले से ही होता है। (2) यदि अपील दण्ड की वैधता या दण्ड की मात्रा के आधार पर की गई हो तो अभिलेख मंगवाना आवश्यक नहीं है।
3. नोटिस की तामील होने तथा अभिलेख आ जाने के उपरांत सभी पक्षों को तारीख की इत्तिला दी जाती है।
4. सामान्य नियम यह है कि जब अपील की सुनवाई होती है तो साक्ष्य पेश नहीं किया जाता है और न ही कोई नया आधार लिया जाता है। मात्र बहस होती है तथा बहस भी सिर्फ उन्हीं बिंदुओं या आधारों पर होती है जो प्रारंभ में अपील में उठाये जाते हैं परन्तु अपीलीय न्यायालय की इजाजत से अन्य बिन्दुओं पर भी बहस हो सकती है।

धारा 391 यह विहित करती है कि यदि विचारण न्यायालय के द्वारा कोई साक्ष्य नहीं लिया गया था जो न्याय के हित में लिया जाना आवश्यक है तो ऐसी दशा में अपीलीय न्यायालय स्वयं ऐसे साक्ष्य को लेने के लिए अग्रसर हो सकेगा। धारा 165, साक्ष्य अधिनियम, 1872 के अनुसार भी न्यायालय विचारण के किसी भी प्रक्रम में साक्ष्य लेने के लिए अग्रसर हो सकता है। अपीलीय न्यायालय को साक्ष्य लेने का अधिकार है। सामान्यतः इस अधिकार का प्रयोग नहीं किया जाता और वह अधीनस्थ न्यायालय को साक्ष्य लेने तथा साक्ष्य का अभिलेख न्यायालय में पेश करने का आदेश दे सकता है। इस प्रकार अपीलीय न्यायालय में 'सुनवाई' शब्द का अर्थ 'मूलरूप से विधि और तथ्य के बिन्दु पर बहस से है'। सुनवाई के उपरान्त अपीलीय न्यायालय द्वारा निर्णय दिया जाता है।

VII. अपीलीय न्यायालय की शक्तियां (धारा 386-390) :

1. अपील की अर्जी को संक्षेपत: खारिज करने की शक्ति।
2. अपील की अर्जी को स्वीकार करने की शक्ति।
3. अधीनस्थ न्यायलय से मुकदमे का अभिलेख मंगवाने की शक्ति।
4. धारा 391 के अन्तर्गत किसी दस्तावेज, साक्ष्य या अभिलेख को प्रस्तुत करने का आदेश देने की शक्ति।
5. अधीनस्थ न्यायालय को अतिरिक्त साक्ष्य लेने एवं अभियुक्त को गिरफ्तार करने का निर्देश देने की शक्ति।
6. अभियुक्त अपीलार्थी को जमानत पर छोड़े जाने का आदेश देने की शक्ति।
7. दण्ड की मात्रा को कम करने या बढ़ाने की शक्ति। यदि दण्ड की मात्रा को बढ़ाया जाता है तो अभियुक्त को सुनवाई का अवसर अवश्य दिया जाना चाहिए।
8. दोषमुक्ति को दोषसिद्धि तथा दोषसिद्धि को दोषमुक्ति में बदलना।
9. दण्ड की प्रकृति में परिवर्तन करने की शक्ति।
10. दण्ड के निष्पादन को स्थगित करने की शक्ति।
11. अधीनस्थ न्यायालय के निर्णय को उलटने, परिवर्तन करने या बनाये रखने की शक्ति।

जब कभी ऐसा आदेश दिया जाता है जो अभियुक्त के हित के विरुद्ध हो तो ऐसा आदेश दिये जाने के पहले अभियुक्त को सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए। विचारण न्यायालय के द्वारा अपीलीय न्यायालय के निर्णय को निष्पादित किया जाता है और आवश्यक हो तो अभिलेख में परिवर्तन किया जाता है।

VIII. अपील का उपशमन (धारा 394) :

निम्न परिस्थितियों में अपील का उपशमन हो जाता है :

1. धारा 377 या धारा 378 के अधीन प्रत्येक अपील का अभियुक्त की मृत्यु पर अन्तिम रूप से उपशमन हो जाता है। धारा 377 एवं धारा 378 के अन्तर्गत अभियोजन पक्ष द्वारा सजा की अपर्याप्तता या दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील की जाती है।
2. यदि जुर्माने के दण्डादेश की अपील अभियुक्त के विरुद्ध हो तो अभियुक्त के मरने पर अपील का उपशमन नहीं होगा। इसका कारण यह है कि जुर्माने की राशि को मृतक की संपत्ति से वसूला जा सकता है। मृतक के वैध प्रतिनिधि मृतक की संपत्ति की सीमा तक उत्तरदायी होते हैं।
3. यदि मृतक के वैध प्रतिनिधि मृत्यु की 30 दिन की अवधि में अपील को जारी रखने का आवेदन करें तो अपील को जारी रखा जा सकता है।

Questions

1. No appeal lies in petty offences. What are petty offences according to Cr.P.C? ***[UPPCS (J) 1988]***
   Ans. Section 376.
2. A first class Judicial Magistrate convicts an accused and fines ten rupees only. Accused want to go in appeal. Advise. ***[UPPCS (J) 1991]***
   Ans. Section 376.
3. A is tried by a Court of Session and is convicted. The court passes a sentence of imprisonment for 2 months and Rs. 200 as fine. A wants to file an appeal in the High Court against his conviction. Advise.
   Ans. Section 376.
4. Is the State Government entitled to file appeal against the order of acquittal of the accused? What is the procedure? ***[UPPCS (J) 1988, UPPCS (J) 2002]***
   Ans. Sections 377 and 378
5. Narrate the appellate powers of High Court in criminal cases. ***[RJS 1992]***
   Ans. Sections 386 – 390.
6. Every criminal appeal shall finally abate on the death of the appellant. Is there any exception to this rule? ***[RJS 1991, 1994]***
   Ans. Section 394
7. When is an appeal not abated on the ground of death of the accused? ***[RJS 1999]***
   Ans. Section 394

